# योगविद्या

वर्ष 4 अंक 9
सितम्बर 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

## हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

**सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

**योग विद्या** मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

**बिहार योग विद्यालय**
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

---

*कुल पृष्ठ संख्या* : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

*कवर फोटो* : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, दिल्ली, 2014

*अन्दर के रंगीन फोटो* : 1-4: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की दिल्ली योग यात्रा, 2014



## आध्यात्मिक मार्गदर्शन

### विचार-शक्ति

विचार मनुष्य को बनाता है और मनुष्य सभ्यता को। इतिहास की प्रत्येक महान् घटना के पीछे एक शक्तिशाली विचार-शक्ति रही है। सभी खोजों और आविष्कारों के पीछे, सभी धर्मों और दर्शन-शास्त्रों के पीछे, सभी प्राण-रक्षक अथवा प्राण-विनाशक उपकरणों के पीछे विचार ही रहे हैं।

एक नई सभ्यता का निर्माण कैसे किया जाए, जो मानव-जाति की शान्ति, समाज की खुशहाली और व्यक्ति की मुक्ति सुनिश्चित कर सकेगी? एक ऐसी विचार-शक्ति के सृजन द्वारा जो मनुष्यों के दिलो-दिमाग में करुणा, सेवा, प्रभु-प्रेम और उसे पाने की तीव्र इच्छा स्थापित कर देगी।

जो धन और समय व्यर्थ के मनसूबों और विनाशकारी गतिविधियों में बरबाद किया जाता है, उसका अंशमात्र भी यदि एक अच्छे विचार के सृजन में दिया जाए, तो अभी और इसी वक्त एक नई सभ्यता का शुभागमन हो जाएगा।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
**मुद्रक** – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
**स्वामित्व** – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

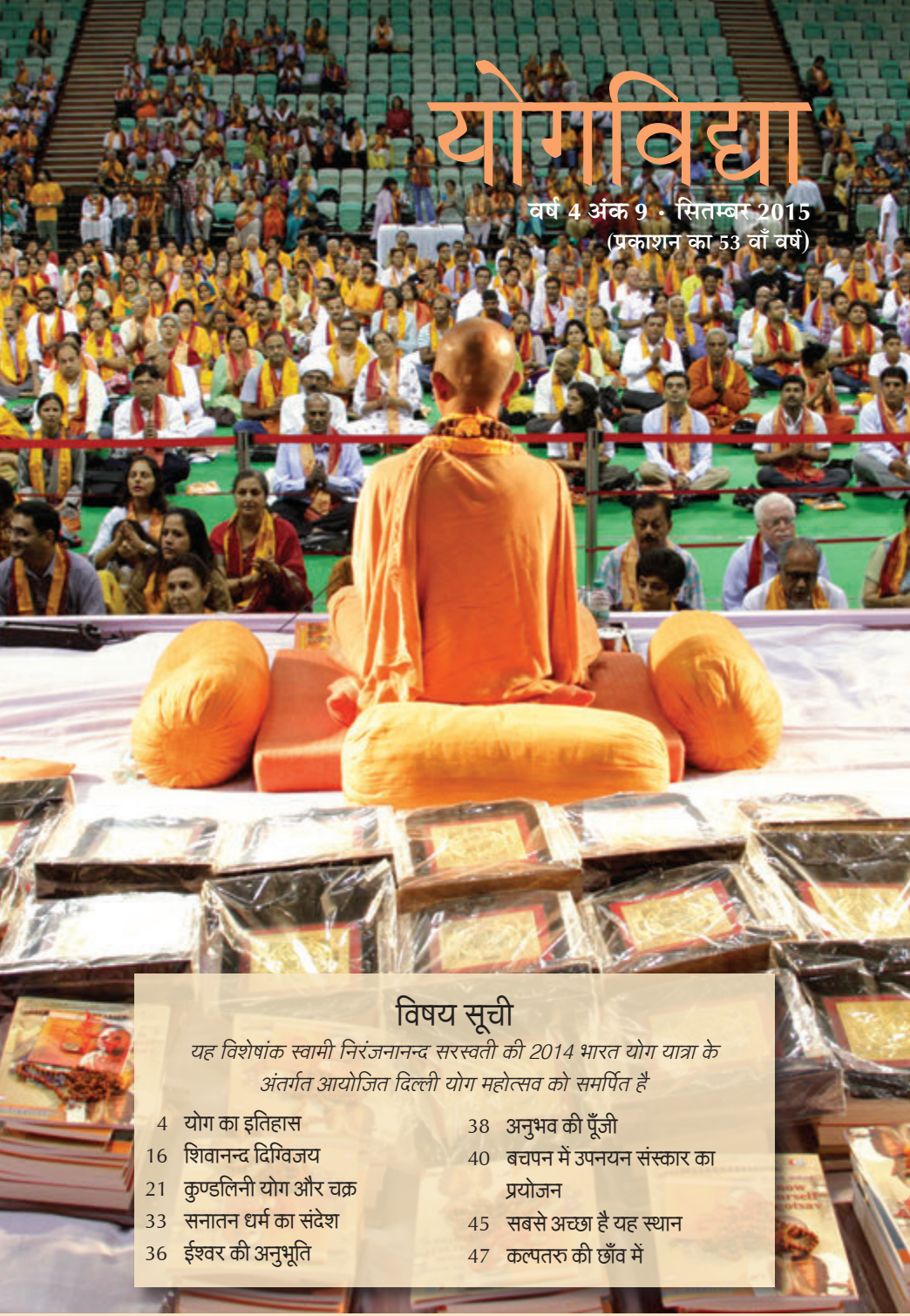

# योगविद्या

वर्ष 4 अंक 9 · सितम्बर 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

## विषय सूची

*यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित दिल्ली योग महोत्सव को समर्पित है*

4 योग का इतिहास
16 शिवानन्द दिग्विजय
21 कुण्डलिनी योग और चक्र
33 सनातन धर्म का संदेश
36 ईश्वर की अनुभूति
38 अनुभव की पूँजी
40 बचपन में उपनयन संस्कार का प्रयोजन
45 सबसे अच्छा है यह स्थान
47 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

# योग का इतिहास

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

## प्राचीन काल में योग

माता पार्वती ने एक दिन भगवान शंकर से प्रश्न किया, 'इस संसार में बहुत कष्ट है, रोग, व्याधि, अशान्ति और अराजकता है। मनुष्य दु:ख के वातावरण में जन्म लेता है, दु:ख में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। सुख प्राप्ति के लिये जीवन पर्यन्त दु:ख से संघर्ष करता है और अंत में दु:ख के वातावरण में मृत्यु को प्राप्त करता है। क्या इस संसार में, इस जीवन में दु:ख से मुक्ति सम्भव है?' तब शिव जी कहते हैं कि संसार निश्चित रूप से दु:खमय है, लेकिन योग के द्वारा मनुष्य अपने आपको सांसारिक दु:खों से अवश्य मुक्त कर सकता है। तब उन्होंने माता पार्वती को योग की शिक्षा दी।

जिस प्रथम योग की शिक्षा शिव जी ने माता पार्वती को दी वह था 'पाशुपत योग' जिसमें पाँच योगों की चर्चा होती है–स्पर्श योग, भाव योग, अभाव योग, मंत्र योग और महायोग। ये पाँच मूल योग हैं जिनकी शिक्षा शिव जी ने दी। लेकिन जब शिव जी शिक्षा दे रहे थे तब पार्वती जी को नींद आ गई, और शिवजी बोलते रहे। शिव जी ने पार्वती जी से कहा था कि तुम बीच-बीच में 'हाँ' कहते जाना जिससे मुझे यह ज्ञात होता रहे कि तुम शिक्षा ग्रहण कर रही हो। शिव जी आँखें बंदकर बोले जा रहे थे, उन्हें 'हाँ' की आवाज भी सुनाई पड़ रही थी। लेकिन जब वे आँखें खोलते हैं तो देखते हैं कि पार्वती जी योगनिद्रा की अवस्था में खुर्राटे ले रही हैं। तब उन्होंने सोचा, जब पार्वती सो रही है तो 'हाँ' कौन कह रहा है?

उन्होंने आसपास देखा कि कहीं कोई छिपा हुआ व्यक्ति तो नहीं है। उनकी नज़र पास की नदी में एक मछली पर पड़ी जो 'हाँ' की आवाज कर रही थी। उस मछली ने संपूर्ण पाशुपत योग विद्या को सुन लिया था। शिव जी ने मछली से कहा कि तुमने हमारी गुप्त वार्ता छिपकर सुनी

है, इसलिए मैं तुम्हें मृत्यु-दण्ड दूँगा। मछली कहती है कि भगवन्, आपने तो यह योग विद्या माता पार्वती को यह कहते हुए दी है कि इससे दु:खों का अंत होगा और अमरत्व की प्राप्ति होगी। मैंने तो पूरी कथा सुन ली है जिससे मेरे सभी दु:खों का अन्त हो गया है और आपकी कृपा से मुझे अमरत्व की प्राप्ति भी हो गई है, फिर आप मुझे मृत्यु-दण्ड कैसे दे सकते हैं? भगवान शिव कहते हैं, 'हाँ यह बात तो सत्य है। ठीक है, मैं तुम्हें दण्ड के बदले आशीर्वाद देता हूँ, तुम मनुष्य रूप में जन्म लोगे और मेरे द्वारा प्रतिपादित इस विद्या का प्रचार इस संसार में करोगे।' कालान्तर में जब उस मछली का जन्म मनुष्य रूप में होता है तब उसका नाम मत्स्येन्द्रनाथ पड़ता है।

मत्स्येन्द्रनाथ का नाथ-सम्प्रदाय पाशुपत योग को जानने वाला सबसे प्राचीन सम्प्रदाय है। सर्वप्रथम मत्स्येन्द्रनाथ ही इस पाशुपत योग की शिक्षा को संसार में लाए और फिर गोरखनाथ जैसे उनके शिष्यों द्वारा इस विद्या का प्रचार-प्रसार हुआ। यह योग का प्राचीन इतिहास है जो अनादिकाल में कभी घटित हुआ था और आज प्रचलन में नहीं है।

## मध्यकालीन युग

मध्यकालीन युग में, जहाँ योग की स्थापना हो चुकी है, कुछ साधु, गृहस्थ, त्यागी, तपस्वी, ऋषि, मुनि इस योग को आत्मसात् कर रहे हैं, तब इनको यह विचार आता है कि इस योगविद्या को समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल कैसे बनाया जाए। तब उन्होंने अनेक सूत्रों के द्वारा योगविद्या को व्यावहारिक तरीके से समझाने का प्रयास किया।

विश्वविद्यालय के विद्यार्थी जिस प्रकार अपना शोधपत्र लिखते हैं और जब शोधपत्र प्रमाणित हो जाता है तब उनको डॉक्टर की उपाधि मिलती है, उसी प्रकार हमारे मनीषियों ने भी योग के अलग-अलग पक्षों पर शोध किया है और उस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, अपना शोधपत्र लिखा है। जैसे हठयोग पर ऋषि स्वात्माराम और ऋषि घेरण्ड ने, राजयोग पर महर्षि पतंजलि ने, भक्तियोग पर ऋषि शांडिल्य और ऋषि नारद ने अपने-अपने शोधपत्र लिखे हैं। इस प्रकार अन्य ऋषियों और योगियों ने भी योग के अलग-अलग पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

इन मनीषियों ने जब योग की व्याख्या की तो उसे मोक्ष या ईश्वर दर्शन का मार्ग नहीं माना। शिव जी ने भी दु:ख-निवारण हेतु योग की शिक्षा दी, ईश्वर-प्राप्ति हेतु नहीं, और मध्यकालीन युग में जिन ऋषियों ने अपने शोधपत्र लिखे, उन्होंने भी योगविद्या को ईश्वर दर्शन का आधार नहीं माना, बल्कि सभी ने अपने विषय से संबंधित अंतिम लक्ष्य को स्थापित किया, जो ईश्वर दर्शन या मोक्ष प्राप्ति से भिन्न है।

## हठयोग

हठयोग का लक्ष्य है प्राणों में संतुलन की स्थापना। हठयोग में जो 'ह' और 'ठ' अक्षर हैं, वे आज्ञा चक्र के बीज मंत्र हैं। बहुत-से लोग इन्हें हं और ठं या हं और क्षं भी कहते हैं। हं मंत्र प्राणशक्ति या सूर्यशक्ति का प्रतीक है और ठं मंत्र चित्त शक्ति या मानसिक शक्ति का प्रतीक है। जिस विधि से प्राणशक्ति और चित्तशक्ति में संतुलन और सामंजस्य आए वह है हठयोग। यहाँ पर हठ का मतलब जोर-जबरजस्ती करना नहीं, बल्कि यहाँ हठ का तात्पर्य है शरीर की प्राणशक्ति और चित्तशक्ति में संतुलन की स्थापना।

इस संतुलन को स्थापित करने के लिये हठयोग के ऋषियों ने सबसे पहले षट्कर्मों का निरूपण किया। उसके बाद आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध के बारे में बताया। हठयोग के ये पाँच अंग माने जाते हैं। प्राय: लोग आसन को ही हठयोग समझते हैं, लेकिन यह धारणा गलत है, क्योंकि आसन हठयोग का पाँचवा हिस्सा मात्र है।

हमारे मनीषियों ने हठयोग के अभ्यासों के क्रम को वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया है। सबसे पहले षट्कर्म हैं मतलब शुद्धिकरण की क्रियायें। यहाँ प्रश्न उठता है कि सबसे पहले शुद्धिकरण क्यों? आयुर्वेद कहता है कि शरीर में तीन दोष हैं—कफ, पित्त और वात। जब ये असंतुलित होते हैं, तब इनके विषाक्त

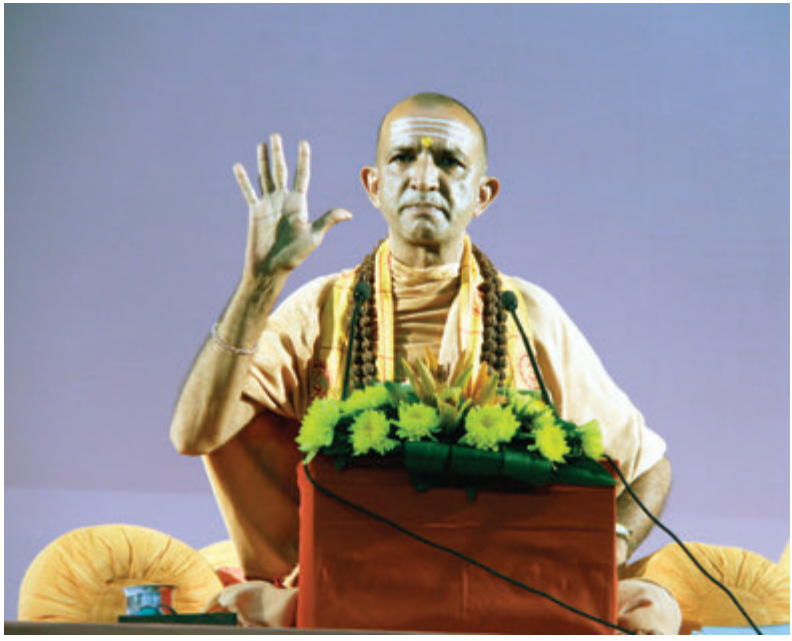

तत्त्व हमारे शरीर की संरचना, स्वास्थ्य और ऊर्जा को प्रभावित करते हैं। इसलिये सबसे पहले षट्कर्मों के द्वारा अपने शरीर को विकारमुक्त बनाना आवश्यक है। मतलब जो दोष गलत दिनचर्या, प्रदूषित वातावरण, सामाजिक अव्यवस्था या पारिवारिक अव्यवस्था के कारण जीवन में उत्पन्न होते हैं उसके मूल कारण को व्यवस्थित करने का प्रयास करना। जब मूल कारण व्यवस्थित हो जाता है, विकार समाप्त हो जाते हैं और स्वास्थ्य की प्राप्ति हो जाती है तब आसनों का अभ्यास शुरू किया जाता है।

आसनों के अभ्यास से शरीर में प्राणों का प्रवाह व्यवस्थित ढंग से होने लगता है। योग चिकित्सा का एक सिद्धान्त है कि अगर कोई अंग रोगग्रस्त होता है, जैसे फेफड़े में दमा या पेट में गैस की समस्या तो उसका मतलब होता है उस अंग में प्राणों की कमी हुई है जिसके कारण वह अंग अपने कार्य को ठीक ढंग से सम्पादित नहीं कर पाया है। इसलिये आसनों के द्वारा उस अंग में प्राणों के संचार को ठीक किया जाता है जिससे वह अंग पुन: शक्तिशाली बनता है और ठीक ढंग से कार्य करने लगता है।

पूर्वकाल में मनीषियों ने देखा कि इन आसनों को करने से मनुष्य अपने आपको प्राकृतिक तरीके से रोगमुक्त कर सकता है। हठयोग प्रदीपिका और घेरण्ड संहिता में आसनों के द्वारा अनेक बीमारियों के उपचार बतलाए गए हैं। जिन बीमारियों का उल्लेख हठयोग के ग्रंथों में है, वे आज भी हमारे समाज में हैं, जैसे मधुमेह, दमा, पेट की तकलीफ इत्यादि। पूर्वकाल में जिन रोगों से मनुष्य ग्रसित होता था, उन्हीं रोगों से मनुष्य आज भी ग्रसित होता है। हठयोग के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि प्रभावित अंगों में ऊर्जा और प्राण के संचार को ठीक करने से बीमारी दूर होती है। इस बात पर हम विश्वास कर सकते हैं क्योंकि हमने अनेक प्रयोगों के दौरान यह सत्य पाया है।

पिछले पचास वर्षों से हम लोग योग पर अनुसंधान करते आ रहे हैं और इन अनुसंधानों में हम लोगों ने देखा है कि दमा, मधुमेह, एच.आई.वी., कैंसर, गठिया, गैस्ट्राईटिस–सबका समाधान योग से सम्भव है। शर्त केवल एक है, योग के नियमों का पालन पूर्णरूप से हो। लोग नियम पालन करने में बहुत कमजोर हैं। बुरा नहीं मानना। मधुमेह की बीमारी होती है, लेकिन मिठाई के स्वाद से मन मुक्त नहीं होता है। इंसुलिन का इंजेक्शन लेकर आप रसगुल्ले खाते हैं क्योंकि मिठाई खाने की आदत लगी है। यदि आप स्वास्थ्य संबंधी नियम और अनुशासन का पालन नहीं कर सकते हैं, तब फिर स्वास्थ्य की कामना भी नहीं करनी चाहिये।

योग सिद्धान्त का कहना है कि अगर आप सौ प्रतिशत योग के नियमों का पालन करोगे तो स्वास्थ्य की प्राप्ति निश्चित है। आसन प्राणों के संचार को व्यवस्थित

करते हैं, प्राणायाम प्राणों को जागृत करते हैं, मुद्रा और बंध प्राणों को एक अंग में केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार हठयोग की पद्धति का सम्बन्ध शरीर और प्राण के साथ है, और शरीर के दु:खों के अंत के साथ योग का एक अध्याय खत्म होता है।

## राजयोग

शरीर को रोगमुक्त करने के बाद मन को व्यवस्थित करने का प्रयास किया जाता है जो राजयोग का विषय है। राजयोग की व्याख्या महर्षि पतंजलि ने की है। महर्षि पतंजलि के शिष्य जब उनसे पूछते हैं कि आप जो योग सिखा रहे हैं उसकी परिभाषा क्या है, उसको हम संक्षेप में कैसे समझ सकते हैं, तो महर्षि पतंजलि कहते हैं– *'अथ योगानुशासनम्'*–योग एक अनुशासन है। अनुशासन दो शब्दों से बना है 'अनु' और 'शासन'। अनु का मतलब सूक्ष्म और शासन का मतलब होता है राज करना। सूक्ष्म कौन है? मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये सभी सूक्ष्म हैं। अथ योगानुशासनम् का अर्थ है–अपने जीवन और व्यक्तित्व के सूक्ष्म आयामों पर नियंत्रण करना।

एक अन्य शिष्य ने जब पूछा कि इस अनुशासन से क्या फायदा होगा तो महर्षि पतंजलि कहते हैं– *'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'* अर्थात् योग के इस अनुशासन के द्वारा तुम अपनी चंचल चित्तवृत्ति को शान्त कर पाओगे। यह अनुशासन का फायदा है। फिर महर्षि पतंजलि तीसरे सूत्र में कहते हैं–'तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम्', तब तुम अपने मूल स्वरूप को जान पाओगे, तुम स्वयं को एक द्रष्टा रूप में देख पाओगे। इन सूत्रों में महर्षि पतंजलि ने राजयोग के पूरे विषय को स्पष्ट किया है

और इसके अलावा उन्होंने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की भी चर्चा की है, जिसका उपयोग चंचल चित्तवृत्तियों को शान्त करने तथा मन को एक बिन्दु में केन्द्रित करने के लिये किया जाता है। जब मन एक बिन्दु में केन्द्रित हो जाता है तब मन की शक्ति जागृत होती है। जैसे बल्ब का प्रकाश चारों तरफ छितराया रहता है, लेकिन जब किसी तरीके से हम उस प्रकाश को एक बिन्दु में केन्द्रित कर देते हैं तब प्रकाश का स्वरूप लेज़र की तरह हो जाता है, वैसे ही मन की ऊर्जा भी छितराई रहती है, लेकिन जब हम इस मन को एकाग्र कर देते हैं, एक बिन्दु में केन्द्रित कर देते हैं तब मन का स्वरूप भी लेज़र की तरह तेज और शक्तिशाली हो जाता है। जब मन की चंचलता शान्त हो जाती है, तब मनोरोग भी समाप्त हो जाते हैं, मन से दु:ख खत्म हो जाता है। तो यहाँ भी योग को प्रयोजन है दु:खान्त। चंचल चित्तवृत्ति का निरोध कर लेने से जीवन की समस्याओं, परेशानियों, दु:खों और कष्टों का निदान हो जायेगा।

## भक्तियोग

हठयोग और राजयोग के बाद तीसरा योग है भक्तियोग जो भावनाओं के लिए है और जिसके विषय में शाण्डिल्य और नारद ऋषियों ने व्याख्याएँ की हैं। भक्ति और भक्तियोग, इन दो शब्दों में अंतर है। भक्ति का मतलब होता है अपने मन को अपने इष्ट या आराध्य के साथ जोड़ देना। लेकिन जब भक्ति शब्द में योग को जोड़ा जाता है तब उसका अर्थ होता है भावनात्मक संतुलन, अपनी छितरी हुई भावनाओं को एक साथ कर देना। छितरी भावना का मतलब क्या होता है? हमारे गुरुजी स्फटिक पत्थर का उदाहरण दिया करते थे। स्फटिक पत्थर का अपना कोई रंग नहीं होता, वह बिल्कुल पारदर्शी होता है, लेकिन अगर उस स्फटिक पत्थर को हम किसी रंगीले वस्त्र के ऊपर रख दें तो उसके भीतर वही रंग दिखलाई देता है। हमारे गुरुजी समझाते थे कि मनुष्य की भावना भी स्फटिक पत्थर की भाँति निर्मल, पवित्र और शुद्ध रहती है। उसका अपना कोई रंग नहीं होता, लेकिन जब यह भावना एक विषय के साथ जुड़ती है तब उस विषय का रंग भावना में दिखलाई देने लगता है।

अगर पैसों की पोटली को देखोगे तो मन में लोभ की भावना प्रकट होगी। अगर अपने प्रिय मित्र को देखोगे तो स्नेह की भावना प्रकट होगी। अगर अपने दुश्मन को देखोगे तो वैर की भावना प्रकट होगी। जैसे ही तुम उस भावना को उस विषय से हटा देते हो तो लोभ, स्नेह या वैर भी छूट जाता है और भावना पुन: अपने वास्तविक निर्मल स्वरूप को प्राप्त करती है। हमारी भावना संसार से जुड़कर प्रेम, घृणा, द्वेष, आसक्ति, हिंसा और अच्छाई जैसे भिन्न-भिन्न भावनात्मक रंगों में परिवर्तित हो जाती है, लेकिन जब हम अपनी भावना को

अंतरात्मा के साथ जोड़ते हैं तब वही भावना हमारे अंदर भक्ति को जन्म देती है। इसलिए अंतर्मुखी भावना को भक्ति भावना भी कहते हैं। मतलब भावना जब संसार से जुड़ती है तब दूसरे रूपों में जानी जाती है और वही भावना जब अंतरात्मा के साथ जुड़ती है तब भक्ति के रूप में जानी जाती है। इसलिये भक्ति का अर्थ होता है भावनाओं का शुद्धिकरण।

भावनाओं के शुद्धिकरण से मनुष्य तामसिकता से मुक्त होता है। जीवन की तामसिकता क्या है? मैं एक कहानी सुनाता हूँ जिससे आप इसे बेहतर समझ पाएँगे। एक बार एक व्यक्ति ने दो-तीन एकड़ बंजर भूमि खरीदकर उस भूमि को साफ किया, पत्थरों को हटाया, मोथा वगैरह निकाला, धरती को तैयार किया। उसके बाद खाद और बीज डाले। कुछ समय बाद वह बंजर भूमि एक सुन्दर फुलवारी में परिवर्तित हो गई। फुलवारी इतनी सुन्दर थी कि दूर-दूर से लोग देखने के लिये आते थे। एक दिन एक पादरी आया और बगीचे में घूमा। उसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसने कहा, 'भगवान की कितनी सुन्दर कृति है!' पादरी की बात सुनकर फुलवारी के मालिक ने हाथ जोड़कर कहा, 'महोदय, इस फुलवारी को भगवान ने नहीं, बल्कि मैंने अपने परिश्रम से बनााया है। जब तक भगवान इस धरती के मालिक थे, यह धरती बंजर थी, कुछ नहीं उगता था, केवल पत्थर और मोथा होता था। मैंने अपने परिश्रम से इस धरती को साफ किया, पौधे लगाये और एक सुन्दर फुलवारी का निर्माण किया। यह मेरा परिश्रम है, ईश्वर का नहीं।'

यह है तो एक कहानी, लेकिन एक दृष्टि से बात सत्य भी है। ईश्वर ने हमलोगों को भी एक अवसर दिया है अपने जीवन में सौन्दर्य की खोज करने के लिए। ईश्वर ने हर चीज को सुन्दर नहीं बनाया है क्योंकि सौंदर्य की खोज हमें करनी है। अगर ईश्वर सभी चीजें हमें दे देंगे तो फिर हमारा परिश्रम क्या होगा? हमलोग फालतू बैठे रहेंगे और निकम्मे हो जाएँगे। इसलिये ईश्वर हमें बंजर भूमि ही देते हैं, जहाँ पर हम परिश्रम करके एक सुन्दर उद्यान का निर्माण कर सकें। ईश्वर ने यह जो शरीर हमें दिया है, एक तरह से बंजर ही है। आप बिना परिश्रम के किसी सद्गुण के फूल को अपने भीतर प्रकट होते नहीं देख सकते हैं, जबकि ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि के मोथे इस शरीर रूपी धरती पर बिना परिश्रम के ही प्रकट होते रहते हैं।

## षट्-सम्बन्धियों की भूमिका

मन के अपने छः मित्र होते हैं जो मन के साथ ही जन्म लेते हैं और हमारे जीवन, व्यक्तित्व और मानसिकता का निर्माण करते हैं। एक समय आता है जब यही छः मित्र हमारे जीवन के विकास में बाधा भी बनते हैं। जब ये छः मित्र बाधा बनते हैं तब इन्हें कहा जाता है शत्रु और ये छः हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और

मात्सर्य। इनके विषय में कहीं से सीखने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ये हमारे जीवन की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ हैं।

जब लोग आश्रमों में या किसी साधु के पास जाते हैं तब यह जरूर पूछते हैं कि आप मुझे कोई तरीका बताइये जिससे मैं अपने जीवन में संवेदनशीलता, करुणा तथा प्रेम को जागृत कर सकूँ। मतलब आपके जीवन में इनका अभाव है क्योंकि आपका जीवन आपके छः सम्बन्धियों के द्वारा निश्चित किया गया है। उनके कारण जीवन में वासनाओं, इच्छाओं और आसक्ति की उत्पत्ति होती है और इन्हीं कारणों से दुःख होता है। गीता में भी कहा गया है–

*संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥*
*क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।*
*स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥*

विषयों के संग से काम और वासना की उत्पत्ति होती है। यदि काम की पूर्ति न हो तो उससे क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध के कारण मनुष्य मूढ़ हो जाता है। मूढ़ता से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और जब बुद्धि नष्ट हो जाती है तब मनुष्य की स्थिति मृततुल्य हो जाती है। भ्रष्ट बुद्धि से मनुष्य जीवन में सुख-शान्ति के बजाय अराजकता और अशान्ति को प्राप्त करता है।

ये छः सम्बन्धी हमारे जीवन के निर्माण में पहले सहायक होते हैं और इस जीवात्मा को संसार से जोड़ने में इनका अमूल्य योगदान होता है। लेकिन जीवन में

ऐसा समय भी आता है जब ये बाधा बनते हैं क्योंकि उस समय इनके कारण जीवन में सुख और शान्ति की हानि होती है। तब इनको कहा जाता है छः शत्रु, षड्रिपु। यही हमारे जीवन के पत्थर और मोथे हैं जिन्हें निकालने की आवश्यकता है। जब ये साफ हो जाते हैं तब मनुष्य अपने जीवन में उत्तमता को प्राप्त करता है और इनकी सफाई होती है भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग के द्वारा। भक्तियोग के द्वारा हम अपनी भावनाओं को शुद्ध बनाकर अपने जीवन में सहजता, विश्वास और निष्ठा को लाते हैं और इन छः नकारात्मक स्थितियों से स्वयं को मुक्त कर पाते हैं। लेकिन इसके लिए मनुष्य को निरंतर श्रद्धा और निष्ठापूर्वक प्रयास करना पड़ता है।

पातंजल योगसूत्रों में कहा भी गया है– *'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः'* अर्थात् जीवन में पुरुषार्थ की सफलता के लिये उसे निरंतर, दीर्घकाल तक, निष्ठा और विश्वास के साथ करना चाहिए। अगर तुम कोई कार्य करते हो और उसमें तुम्हारा विश्वास नहीं है तो फिर उस कार्य में सफलता भी संदिग्ध रहती है।

## महायोग

इस प्रकार मध्ययुग में योगदर्शन का आधार रहे हठयोग, राजयोग और भक्तियोग जो समाज में व्यापक रूप से प्रचलित थे। लेकिन कुछ योग पद्धतियाँ ऐसी भी थीं जिनका उपयोग योगी अपनी अंतर्यात्रा के लिये किया करते थे। उनमें से एक पाशुपत योग का महायोग था। यही महायोग आज का कुण्डलिनी योग और क्रियायोग है।

महायोग की साधना केवल ऋषि-मुनि करते थे। हमारी संस्कृति में दो प्रकार की परम्परायें रही हैं। पहली, परिवार तथा समाज में संलग्न लोगों के लिए और दूसरी, समाज से पृथक् रहने वाले त्यागियों और तपस्वियों के लिए। जो परिवार तथा समाज में संलग्न हैं और जिनके अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व हैं, उनके लिये हठयोग, राजयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग निश्चित किया गया है। जो समाज और परिवार से अलग हो चुके हैं, जिनको संसार के विषय और वासनाएँ अब आकर्षित नहीं करतीं, जो अपनी अंतरात्मा का अनुसंधान करना चाहते हैं, उन लोगों की अंतर्यात्रा कुण्डलिनी योग और क्रियायोग से आरम्भ होती है।

कुण्डलिनी योग तथा क्रियायोग को हमारे मनीषियों ने गुप्त रखा। इसकी शिक्षा समाज में प्रदान नहीं की गई, बल्कि गुरु-शिष्य परम्परा के अंतर्गत ही सीमित रखी गई, क्योंकि इसके द्वारा आप अपने जीवन की नई अवस्थाओं को समझने में और चेतना के नये आयामों का उपयोग करने में सक्षम हो जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति विशेष प्रशिक्षण और उपयुक्त मानसिक स्थिति को प्राप्त किए बिना इन प्रतिभाओं को प्राप्त करता है तो वे उस व्यक्ति के लिये हानिकारक भी हो सकती हैं।

इसलिये मध्यकालीन युग में मनीषियों ने योग के केवल उन्हीं पक्षों को समाज के सामने रखा जो समाज के लिए व्यावहारिक और सबके लिये उपयोगी

थे। समाज में जीवन निर्वाह के लिये योग के जिन पक्षों की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन जिनकी आवश्यकता साधुओं को थी, उन्हें अलग कर दिया गया और गुप्त रखा गया।

## आधुनिक काल में योग

आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द, परमहंस योगानन्द और स्वामी शिवानन्द जैसे मनीषियों ने सबसे पहले योग की भूमिका बनाई। स्वामी विवेकानन्द ने योग के चार अंगों–राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग पर सैद्धांतिक प्रवचन दिये, लेकिन उनकी व्यावहारिक पद्धति के बारे में नहीं बताया। परमहंस योगानन्द ने क्रियायोग की गुप्त शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास किया। स्वामी शिवानन्द जी ने वेदान्त और योग, दोनों को जोड़कर जीवन के अनुशासन को एक जीवनशैली के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया। और हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी ने योग को व्यावहारिक, वैज्ञानिक और शैक्षणिक रूप देकर सर्वसुलभ बनाया।

आज हम जिस योग के विषय में बतलाते हैं वह योग जीवन की प्रतिभाओं के साथ जुड़ा हुआ है, ईश्वर के साथ नहीं। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी के अनुसार आधुनिक युग में योग का प्रयोजन बौद्धिक और भावनात्मक प्रतिभाओं का विकास तथा कर्म कौशल को प्राप्त करना है। लेकिन वर्तमान समय में हम सब लोगों में बुद्धि, भावना और कर्म की प्रतिभाएँ अलग-अलग दिशाओं में कार्य कर रही हैं। बुद्धि की दिशा अलग है, भावना की दिशा अलग है और कर्मों की दिशा अलग है, जिसके कारण हम अपनी प्रतिभाओं का समुचित उपयोग नहीं कर पाते

हैं और समाज को भी किसी प्रकार का लाभ प्रदान नहीं कर पाते हैं। इसी कारण से हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अव्यवस्था, अशांति और अराजकता है।

## अनुपात का महत्त्व

स्वामी शिवानन्द जी ने जीवन की इन सभी प्रतिभाओं की जागृति और इनके व्यवस्थित, संगठित और लाभकारी उपयोग के लिए योग की सभी शाखाओं का सहारा लिया। वे कहते थे कि सब्जी बनाते हो तो सब्जी में सब चीजें अलग-अलग अनुपात से डालते हो। एक लीटर पानी में एक किलो पालक, एक किलो नमक, एक किलो टमाटर, एक किलो आलू और एक किलो मसाला डालकर सब्जी नहीं बनती है। एक लीटर पानी में सब्जी, नमक, मसाले, टमाटर, आलू, प्याज और अन्य सभी चीजों का अनुपात अलग-अलग होता है। अगर उस अनुपात से कम-ज्यादा होगा तो सब्जी का स्वाद बिगड़ जायेगा।

जिस प्रकार सही अनुपात के द्वारा हम भोजन को स्वादिष्ट बना सकते हैं उसी प्रकार सही अनुपात के द्वारा ही हम योग को अपने लिये उपयोगी और लाभकारी बना सकते हैं। अगर एक घण्टा आसन, एक घण्टा प्राणायाम, एक घण्टा ध्यान, एक घण्टा मंत्र, एक घण्टा योगनिद्रा, एक घण्टा सत्संग करोगे तब तो जिन्दगी में और कुछ करने का समय ही नहीं मिलेगा। अगर आधा घण्टा आसन करते हो तो पन्द्रह मिनट प्राणायाम करो, अगर आधा घण्टा योगनिद्रा करते हो तो पन्द्रह मिनट ध्यान करो। ये योग अभ्यासों के सही अनुपात के उदाहरण हैं। एक घण्टे तक ध्यान करते हुए सो जाना ध्यान नहीं कहलाता है। बहुत-से लोग ध्यान करते-करते सो जाते हैं और कहते हैं कि मैं तो अंतर्मुखी हो गया था, ध्यान की बहुत ही गहरी अवस्था में चला गया था। लेकिन वास्तव में वे नींद की अवस्था में चले जाते हैं। एक घण्टा ध्यान करोगे तो निश्चित ही नींद आयेगी।

मैं एक घटना का उदाहरण देता हूँ जो मेरे साथ घटी थी। हमारे गुरु जी ने हमें एक मंत्र दिया और कहा कि इस मंत्र का एक माला जप करना। मैंने पाँच मिनट में एक माला जप कर लिया और स्वामीजी से कहा कि पाँच मिनट में हो गया, क्या मैं दो माला मंत्र जप सकता हूँ? वे बोले, ठीक है दो माला करो।

हमने दस मिनट में दो माला जप कर लिया। फिर स्वामीजी से पूछा कि पाँच माला कर सकते हैं क्या। उन्होंने हमारी ओर देखा और कहा कि ठीक है, करो। पाँच माला पच्चीस मिनट में खत्म कर दी। जब यह हो गया तो स्वामीजी हमसे पूछते हैं कि तुमने पाँच माला जप किया है, यह बताओ कि कितनी सजगता थी तुममें। हमने कहा कि शायद पहले दाने में मंत्र का ख्याल रहा होगा, लेकिन बाकी में दिमाग इधर-उधर चला गया था।

स्वामीजी ने कहा, 'इसीलिये तो कह रहा हूँ कि केवल एक माला करो।' और मैं आज भी एक ही माला करता हूँ। गुरुजी ने कहा है इसलिये नहीं, बल्कि उनके कहने में मुझे जो चीज दिखलाई दी उसके कारण। वह चीज थी अभ्यास का अनुपात। मतलब मुझे मात्र एक माला मंत्र जप करने की आवश्यकता है। अगर एक पूरी माला में हम अपने ध्यान को केन्द्रित नहीं रख सकते हैं तो सौ माला करने से क्या लाभ! अगर हर दाने के साथ मंत्र का ख्याल रहे और एक माला बिना विघ्न के पूर्ण हो जाए तो वही हमारे जीवन की उपलब्धि रहेगी। हम हजार माला जप करें, पर केवल दस दानों पर ही मंत्र का ख्याल हो और बाकी पर हमारा मन भटक जाए, तब उस मंत्र साधना से कोई लाभ होने वाला नहीं है। इसलिये हर चीज में एक अनुपात की आवश्यकता है जो हमारी पात्रता और ग्रहणशीलता के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए।

हमारे ऐसे भी भक्त हैं जिन्हें हाथ में माला पकड़ते ही नींद आ जाती है। तब उस साधना का क्या प्रयोजन? फिर बैठकर ध्यान मत लगाओ, बल्कि खड़े होकर, आँखें खोलकर अपना जप करो। यहीं सजगता और आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता होती है। अगर एक एस्प्रिन की गोली लेने से आपका सिरदर्द दस मिनट में ठीक होता है तो क्या दस एस्प्रिन लेने से एक मिनट में दूर होगा? नहीं। अगर दस एस्प्रिन की गोली लेंगे तो भी सिरर्दद ठीक होने में उतना ही समय लगेगा, और हानि भी होगी। यही सिद्धान्त योग में भी लागू होता है।

इसलिये योग में अनुपात का ख्याल करना आवश्यक है, और योग को एक अभ्यास के रूप में नहीं बल्कि स्वभाव, आदत और दिनचर्या के रूप में अपनाना चाहिये। उदाहरण के लिए, आप थकते हैं तो बिस्तर में कुछ समय के लिए लेट जाते हैं। अगर लेटते समय आप पन्द्रह मिनट के लिये योगनिद्रा का अभ्यास कर लोगे तब फिर जो ऊर्जा शरीर में आयेगी वह आपको अगले दिन तक तरो-ताजा रखेगी। इस प्रकार जब कभी आप विश्राम करने के लिए जाते हैं तो उस समय योगनिद्रा का अभ्यास करें जिससे यह आपकी आदत, आपका स्वभाव बन जाए और आपकी जीवनशैली का अंग बन जाए। योग जब जीवनशैली का अंग बनता है तभी यह मानसिक एवं भावनात्मक प्रतिभाओं की जागृति और उनके समुचित विकास तथा कर्म कौशल की प्राप्ति का माध्यम बनता है।

*–18 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली*

# शिवानन्द दिग्विजय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

*स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अपने महान् गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सन् 1950 की चिरस्मरणीय अखिल भारतीय दिग्विजय यात्रा के प्रत्यक्ष साक्षी और अभिन्न सहभागी रहे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'शिवानन्द दिग्विजय' से इस अद्भुत यात्रा के दिल्ली चरण की कुछ प्रेरणास्पद झांकियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।*

4 नवम्बर। भारत की राज्यभूमि पूर्णत: सजग थी। लाखों की संख्या में जनपदवासी तिल-तिल भर भूमि को प्राच्छादित किए हुए थे। सबके हृदयों में उल्लास और नेत्रों में प्रतीक्षा थी। हिमालयानुवर्त्ती शिवगिरि अंचल के अवतार की धर्मध्वजा के नीचे लाखों प्राणियों को विश्राम देने, जनतन्त्र भारत की अहोपुण्य राजधानी पूर्णत: सन्नद्ध थी, जबकि निशान वायु में फहरा रहे थे, शंखों की ध्वनियाँ वृक्षों के शिखरों तक जाग-जाग कर, किसी के आगमन का निश्चय कर रही थीं।

अरुणोदय हुआ और 7 बजे ही थे कि यथापूर्व गति से वायु को चुनौती देती, दिशाओं और प्रदिशाओं को कम्पित करती, हमारी दिग्विजयिनी अपने दिगन्तोज्ज्वल शुभ्र कीर्ति के गौरव-ललाट महाराज को लेकर, नई दिल्ली के स्टेशन पर आ खड़ी हुई। अभिनन्दन के लिए आए हुए नागरिकों के नेत्रों में अमित शीतलता का आविर्भाव हुआ, जब प्रथम बार महाराज ने 'टूरिस्ट कार' के विशाल द्वारों से उनको दर्शन दिए। सहसा ही आनन्दोद्रिक्त होकर, तालियाँ बज उठीं और रामनाम की ध्वनि से समस्त जनमण्डल पावन हो गया।

नगर के जन-शिरोमणियों ने जनपद की ओर से स्वामी जी का स्वागत किया। माननीय गोस्वामी गणेशदत्त जी के तत्त्वावधान में संयोजित 'महावीर दल' के स्वयंसेवकों तथा बालचरों ने महामन्त्र कीर्त्तन की स्वरलहरी जगा कर, स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया और 'दिव्य जीवन मण्डल' की धर्म-ध्वजा को लहराया।

'स्थानीय स्वागत समिति' के संचालकों और सहयोगियों ने बारी-बारी से महाराज की वन्दना की। उनमें प्रमुख थे—श्री मोहनलाल सक्सेना (भूतपूर्व पुनर्वास मन्त्री), धर्मप्रचारधुरन्धर श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी (अखिल भारत सनातन धर्म सभा के मुख्य-मंत्री), रायबहादुर श्री नारायणदास जी (श्री बिरला मन्दिर ट्रस्ट के मन्त्री), श्री एम.सी. दावर, भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री ए.एन.एस. मूर्ति, नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री ऋषि, रावसाहब श्री बी.एल. बाट्रा, रावसाहब श्री ए.वी. रामन्, 'वैदिक संघ' के प्रचालक श्री वैद्यनाथन्, दिल्ली की 'स्वागत समिति' के संचालक श्री डी. नारायण स्वामी चेट्टी तथान्य राज्याधिवर्ग एवं च परावारविहारी जनसमुदाय।

स्वागत-आयोजन यथानुकूल और यथाविधि सम्पन्न हुआ। श्री स्वामी जी सुप्रसिद्ध 'बिरला मन्दिर' की सीमाओं में संप्रविष्ट हुए, जहाँ उनके स्थानीय-निवास का आयोजन श्रीयुत् बिरला जी की इच्छा के अनुसार किया हुआ था।

दिनभर दर्शनार्थियों का समागम तैलधारावत् अविच्छिन्न रहा। सहस्रों को मन्त्रदीक्षा दी गई, उनकी समस्याओं का उत्तर दिया गया और उनके जीवन-पथ की आध्यात्मिक-कठिनाइयों के परिहार का मार्ग भी बताया गया। उस जनसमागम में राज्याधिकारी वर्ग तथा साधारण जनता तो थी ही, साथ-साथ अनेकों मतों के अनुयायी भी सम्मिलित थे, जिन्होंने धार्मिक भेदभाव को तिलांजलि देकर, महात्मा के आशीर्वाद का महत्प्रसाद ग्रहण करते हुए, अपने पूर्वजों की परिपाटी को जीवन-दान दिया और अपने जीवन को सफल तथा तीर्थरूप बनाया।

गोस्वामी श्री गणेशदत्त की अहैतुकी कृपा का वर्णन किस प्रकार किया जाए? श्री स्वामी जी की निवास-विषयक सुविधाओं का उन्होंने अतितर सुन्दर आयोजन किया हुआ था। सब कुछ होने पर भी वे बारम्बार महाराज के कुशल-समाचार पूछते रहते थे। उनकी धर्म-भावना को कोटिश: प्रणाम!

उसी दिन सायंकाल की नीरव बेला में स्वामी जी से श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला जी का सम्मिलन हुआ। धर्मधुरन्धर सेठ जी तथा धर्मचक्रप्रवर्तक स्वामी जी के बीच विचारों का विनिमय हुआ। अनेकानेक विचारों की पृष्ठभूमि में आधार रूप से ईश्वर-कृपा को ही सर्वशक्तिमती बतलाते हुए, स्वामी जी ने जटिल राजनैतिक प्रश्नों का यही उत्तर दिया, 'परमपिता की इच्छा ही सर्वशक्तिमती है। वे यथायोग्य कार्य सम्पन्न करते रहते हैं। मनुष्य उनके सामने केवलमात्र अस्तित्वहीन तत्त्व है, जिसका भूत, वर्तमान और भविष्य केवलमात्र माया की कपोल कल्पना है।'

लगभग 45 मिनट तक यह साक्षात्कार हुआ, जिसमें विभिन्न परिस्थितियों का समाधान आचरणनिष्ठा में सन्निहित माना गया और यह बतलाया गया कि आध्यात्मिक-आचरण के उदय होते ही सभी क्लेशों और सभी दु:खों की इति-श्री हो जाती है, परिस्थितियों के अन्धकार का निवारण हो जाता है और ज्ञानोदय की प्रभा में मानव-पथ स्वच्छ एवं निर्मल बन जाता है।

रात को श्री बिरला मन्दिर के सामने प्रशस्त पण्डाल के नीचे 'सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा' के तत्त्वावधान में श्री स्वामी जी का स्वागत हुआ। विशाल जन-प्रांगण में उत्सव की भूमिका को जन्म देते हुए, मुख्यमन्त्री श्री गोस्वामी गणेश दत्त जी ने महाराज के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकाशित की। अनन्तर जनता ने श्री गोस्वामी जी के मुखारविन्दों से 'शिवगिरि अंचल' के तपस्वी की महिमा के मन्त्र सुने और अपने जीवन को पवित्र माना। 'धर्म प्राण हमारे स्वामी जी महाराज परात्पर ज्ञान की परम महनीय भूमिका में समधितिष्ठित रहते हुए भी जन-कल्याण के प्रशस्त कार्य को सुस्थिररूपेण संचालित कर रहे हैं, जिसका सूत्र विराट्-मानव समुदाय को

एकता के विचारों में ग्रथित करता जा रहा है... ' प्रवचन देते हुए श्रीयुत् गोस्वामी जी ने यही कहा था।

तत्परत: हर्षनाद से विजयान्वित-स्वरूप के तेज को प्राप्त हुए स्वामी जी मंच पर उदित हुए... हिरण्यगर्भ की स्वर्णप्रभा के समान, मानो वेदों की ऋचाओं का उच्चारण कर रहे थे। सनातन धर्म पर व्याख्यान दिया और उस धर्म की व्यावहारिकता का स्वरूप भी दिग्दर्शित किया। 'धर्म जटिल नहीं,' उन्होंने कहा, 'किन्तु धर्म आपके जीवन का आत्मप्राण है, जिसका व्यवहार करने से ही मनुष्य-संज्ञा निर्धारित की जा सकती है। जीवन का प्रत्येक कर्म धर्म की कसौटी है। जीवन की भावनाएँ ही धर्म का निर्णय करती हैं। सदाचार ही धर्म है और ईश्वर-प्रणिधान ही धर्म है। आध्यात्मिक-भावना में अपने जीवन का निर्माण करना ही धर्म का व्यवहार है और परहितपरायणता ही धर्म की भूमिका है, जहाँ प्रत्येक मनुष्य मनुष्यत्व से परे देवत्व और उससे भी परे आत्मत्व की विभूति के प्रोज्ज्वल दर्शन करता है... ' इस प्रकार प्रवचन-प्रवाह प्रतिप्रवाहित रहा। दूर-दूर से आए हुए यात्री उसमें स्नान कर रहे थे, प्यास बुझा रहे थे और उसकी पूजा कर रहे थे।

तदुपरान्त श्री एन.वी. गडगिल् जी तथा श्री दीनानाथ 'दिनेश' जी के व्याख्यान हुए। जब सभा विसर्जित हुई तो मध्यप्रहरीय अन्धकार प्रगाढ़ होता जा रहा था।

5 नवम्बर। प्रात:काल 'योगाश्रम' में श्री स्वामी जी का भाषण हुआ। इस अवसर पर श्री वृजलाल नेहरू भी उपस्थित थे। 'योगाश्रम' के संचालक श्रीयुत् आत्माराम जी ने, जो पूर्व-लाहौर के प्रसिद्ध योगनिष्ठ प्रकाशदेव जी के अनुयायी हैं, स्वामी जी का सप्रेम अभिवादन किया।

भूमिका का सूत्रपात करते हुए श्रीयुत् वृजलाल नेहरू ने कहा, 'स्वामी जी का परिचय अनावश्यक है, क्योंकि सारा संसार उनको भली-भाँति जानता है।' लाहौर के दिनों की याद दिलाते हुये आपने कहा, 'मुझे स्वामी जी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य पूर्व-लाहौर में हुआ, जहाँ महाराज जी ने हरिकीर्तन की लहर जगाई थी।'

श्री वृजलाल नेहरू की प्रस्तावना के उपरान्त स्वामी जी का योग-विषयक

भाषण हुआ। आपने कहा, 'प्रत्येक को चाहिये कि वह नित्यप्रति योगासनों का अभ्यास करे। योगासनों के अभ्यास से न केवल शरीर की पुष्टि होती है, अपि च मानसिक शक्ति के बन्द द्वार भी खुल जाते हैं और आत्मज्ञान का प्रकाश जागृत होता है।'

श्री स्वामी जी के उपदेशों के उपरान्त श्रीयुत् प्रकाशदेव जी ने अपने पुराने लाहौर के दिनों की पुनरावृत्ति की, जबकि उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य प्राप्त किया था।

अन्त में विधान-परिषद् के सदस्य पंडित ठाकुरदास भार्गव ने, जो उस सभा के अध्यक्ष थे, स्वामी जी के प्रति अपना प्रणाम समर्चित किया और आशीर्वाद का आग्रह भी।

'योगाश्रम' के उपरान्त श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला जी के निवास-गृह में श्री स्वामी जी के पदप्रवेश हुये और 'बिरला गृह' पवित्रतम हुआ! इसी अवसर पर महात्मा गाँधी जी के 'प्रार्थना-भवन' के दर्शन भी सम्पन्न हुये।

दोपहर को 12 बजे तक 'बिरला मन्दिर' के सामने प्रशस्त पंडाल के नीचे जनता की ओर से महाराज की पादपूजा सम्पन्न हुई। पादपूजा के अनन्तर श्री स्वामी जी ने कई भक्तों के निवास-स्थानों को परम-मन्त्र में दीक्षित किया। भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री मूर्त्ति, यातायात विभाग के मन्त्री श्री वाय.एन. सूक्तांकर महोदय के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके घरों में जाकर स्वामी जी ने 'राजवर्ग-द्वारा-धर्मप्रचार' की लहर प्रसारित की। स्टेट्स मिनिस्ट्री विभाग से श्रीयुत् जी.आर. चौबल भी श्रीयुत् सूक्तांकर के निवास-स्थान में उपस्थित थे; जिन्होंने उस सत्संग में योग दिया था।

उपरोक्त दोनों महानुभावों के निवास स्थान को दीक्षित करने के उपरान्त स्वामी जी विधान-परिषद् के सदस्य और भूतपूर्व पुनर्वास मन्त्री श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना के आवास-गृह को पवित्र करने गए।

तथा, सायंकाल के संप्रतिपूर्व 'दिग्विजय मंडल की स्वागत समिति' के तत्त्वावधान में दिल्ली का 'सार्वजनिक भवन' नगर के जनशिरोमणियों से आपूर्यमाण था। माननीय न्यायाधीश श्रीयुत् चन्द्रशेखर अय्यर (सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया), श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना (विधान-परिषद् के सदस्य), श्री वृजलाल नेहरू, श्रीयुत् अब्दुल मजीद खाँ (सौदी अरेबिया में भारत के भूतपूर्व राजदूत) तथान्य राज्याधिकारीगण एवं च भक्तिभाव-समन्विता जनता 'सार्वजनिक भवन' में महात्मा के सन्देश को सुनने, शान्त तथा नीरव वातावरण की सृष्टि करती हुई खड़ी थी।

मंगलाचरण हुए। समिति के संचालक ने प्रस्तावना का सूत्रपात किया और सभा प्रारम्भ हुई। धाराप्रावाहिक व्याख्यान हुए—महात्मा के जीवन-रहस्य को विमुक्त करते, और उनके यशचन्द्र को कीर्तिमती ज्योत्स्ना से आचन्द्रांकित करते हुये। श्री आनन्द स्वामी सरस्वती जी महाराज का व्याख्यान हुआ। श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना

जी ने भी महात्मा के प्रति अपनी अर्चना समर्चित की। वाग्मंजरी से सुशब्दललिता पुष्पावलियों को चुन-चुन कर, श्री अब्दुल मजीद खाँ ने भी बिल्वारण्य-क्षेत्र के महर्षि की पूजा की और आशीर्वाद की अभियाचना भी।

'अपने को विमुक्त करो बन्धनों से' सबने स्वामी जी के सन्देश सुने, 'यदि चाहते हो अप्रतिहत कल्याण और अनन्त की गोद में विश्राम तथा परमात्मा का आनन्ददायक सन्निधान...!' स्वामी जी कहते गये अपने प्रवचन। आत्मा के गुणों का व्याख्यान किया, सदाचार की विवेचना की। सदाचार और धर्म, ईश्वर और धर्म, मनुष्य और धर्म, राजनीति और धर्म, व्यवहार और धर्म—सबकी एकता का सिद्धिकरण किया और इन सब में परमात्मा की ही सर्वव्यापकता को दिग्दर्शित किया।

स्वामी जी की अनहत गीता को राजधानी के आत्मप्राण सुनते गये। उनकी आत्मा प्रफुल्लित होती गई और उनकी चेतना विकसित। उनका संकीर्णवाद संकुचित होता गया और उनका लोकव्यवहार गलित। पवित्रता रही और कलुषता का निराकरण हुआ। आत्मा का सन्निधान प्राप्त हुआ और हुआ अनात्मा का तिरस्कार।

अन्त में माननीय अध्यक्ष श्रीयुत् पतंजलि शास्त्री जी ने स्वामी जी की दीर्घायु के लिये परमात्मा से अभियाचना की और कहा, 'स्वामी जी इसी प्रकार धर्मसंस्थापन का कार्य युगानुयुगों तक करते रहें—मानव को आत्मक्षेम, आत्मकल्याण और आध्यात्मिक-मोक्ष की ओर प्रेरित करते रहें अपि च उपनिषद् के देश, वेदों की भूमि के यश को अक्षुण्ण और कल्पान्तव्यापी बनाए रखें।'

'वैदिक संघ' के पुरोहितों के वेदोच्चारण के उपरान्त सभा विसर्जित हुई—अपनी छाप सहस्त्रों हृदयों में अमिट बना कर, जिसका आधार था स्वामी जी का अतुलेय व्यक्तित्व और उनका तपोज्ज्वल-ज्ञान।

उपरोक्त सत्संग करने के उपरान्त जब हम 'बिरला मन्दिर' के प्रशस्त पंडाल में पहुँचे तो रात के 9 बज चुके थे। हिमांचलागता शीतल वायु बह रही थी और लोग कांप रहे थे। किन्तु स्वामी जी के आते ही पुन: योगाग्नि का संचार हुआ और वे लोग अपने शरीर की सुध-बुध भूल गए। स्वामी जी के कीर्तन और भजन हुए—उपदेश भी तो। आनन्द और परमानन्द में समाश्रित थी जनता। तीव्रगति से बह रहा था मलय-पवन, मानो भक्ति की हिम-परीक्षा हो रही थी। आँखें खोले नहीं खुलती थीं। हाथ पसारे नहीं पसारे जाते थे। परन्तु रामनाम के गुण गाने के लिये वाणी जीवित थी, और थी सतत्-सन्नद्ध। क्या बच्चे और क्या युवक, क्या स्त्रियाँ और क्या पुरुष—सभी ने मानो पंडाल को नहीं छोड़ने की शपथ खा ली थी।

अन्तत: मध्यप्रहर की रजनी ने सत्संग की मधुरता को सहस्त्रों जीवों में तन्मय देखा। उन सब लोगों के साथ श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला भी जा रहे थे—भक्ति और आनन्द से आप्लावित, मोक्ष के विचारों में लीन तथा परम शान्ति की भावनाओं से अभिरंजित।

# कुण्डलिनी योग और चक्र

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग में शिव को चेतन तत्त्व और शक्ति को क्रियाशील तत्त्व का प्रतीक माना गया है। इन्हें पुरुष और प्रकृति या ब्रह्म और माया जैसे अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। लेकिन 'तंत्र' शब्द की व्याख्या से शिव और शक्ति तत्त्वों को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। तंत्र दो धातुओं के मेल से बना हुआ है *'तनोति'* और *'त्रायते'*। तनोति का तात्पर्य चेतना के विकास से है और त्रायते का शक्ति को स्वतंत्र करने से। इस प्रकार तंत्र का अर्थ होता है वह विधि जिसके द्वारा हम अपनी चेतना का विकास कर अपनी शक्ति को स्वतंत्र कर सकते हैं। यही शिव-शक्ति का वास्तविक स्वरूप भी है। कुण्डलिनी योग के अनुसार शिव और शक्ति का स्थान सहस्त्रार चक्र है जहाँ पर शिव और शक्ति तत्त्व पूर्ण सायुज्य की अवस्था में एक साथ रहते हैं। यह चक्र हमारे मस्तिष्क के अन्दर सबसे ऊपरी भाग में स्थित है।

तंत्र दर्शन के अनुसार शिव तत्त्व में एक विचार उत्पन्न होता है– *'एकोऽहं बहुस्याम्'* मतलब मैं एक हूँ और मैं अनेक रूपों में अपने आपको व्यक्त करना चाहता हूँ। तब इस संकल्प को मूर्त्तरूप देने के लिये शक्ति क्रियाशील होकर शिव से अलग होती है और विभिन्न तत्त्वों को जन्म देती है। इस प्रक्रिया के अन्त में हम शरीर को प्राप्त करते हैं और वह परम शक्ति इस पदार्थ रूपी शरीर में सीमित हो जाती है। इस प्रक्रिया को हाईड्रो-इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन में बिजली के उत्पादन और वितरण के उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लिजिए की इलेक्ट्रिक पावर स्टेशन में 11 हजार वोल्टेज की बिजली का उत्पादन हो रहा है। इतनी वोल्टेज वाली बिजली का उपयोग हम अपने घर में कभी नहीं कर सकते। अपने उपयोग के अनुकूल बनाने के लिए उसे ट्रांसफॉर्मर द्वारा 440 वोल्ट की बिजली में रूपान्तरित कर दिया जाता है। पुन: 440 वोल्ट वाली बिजली को 220 वोल्ट की बिजली में रूपान्तरित कर दिया जाता है। इस प्रकार बिजली की क्षमता का हर ट्रांसफॉर्मर से गुजरने के बाद रूपान्तरण होता है और जब यह बिजली हमारे घर में आती है तब हम उससे पंखा, फ्रिज, टी.वी. आदि चला सकते हैं क्योंकि अब वह हमारे उपयोग के लिये अनुकूल हो गई है। लेकिन 11 हजार वोल्ट की बिजली यदि आपके घर में आये तो पूरा घर ध्वस्त हो जायेगा। कुण्डलिनी योग में चक्रों का भी यही सिद्धान्त है।

हमारे अन्दर उच्चतम क्षमता वाली जो मूल शक्ति है उसका भी रूपान्तरण होता है जब वह विभिन्न चक्रों से गुजरती हुई हमारे जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध होती है। हमारे अंदर पहला ट्रांसफॉर्मर है आज्ञा चक्र, जो भ्रूमध्य के पीछे मस्तिष्क

क्षेत्र में स्थित है। वह परम शक्ति जब आज्ञा चक्र में आती है तब उसका रूप होता है मन। फिर नीचे कंठ प्रदेश में दूसरा ट्रांसफॉर्मर है जिसको कहते हैं विशुद्धि चक्र। यहाँ शक्ति आकाश तत्त्व के रूप में आती है। उसके बाद फिर शक्ति नीचे आती है हृदय क्षेत्र में स्थित अनाहत चक्र में, जहाँ पर वह शक्ति वायु तत्त्व में रूपान्तरित हो जाती है। फिर वह शक्ति नीचे आती है नाभि के पीछे स्थित मणिपुर चक्र में और यहाँ शक्ति अग्नि तत्त्व के रूप में विद्यमान रहती है। पुन: शक्ति जल तत्त्व के रूप में मेरुदण्ड के सबसे नीचले छोर पर स्थित स्वाधिष्ठान चक्र में आती है। और अंत में शक्ति मूलाधार चक्र में आती है जो हमारे शरीर में जननांगों के पास स्थित है। यहाँ शक्ति पृथ्वी तत्त्व या पदार्थ का स्वरूप धारण करती है।

हमारी जीवन की अभिव्यक्ति भी पदार्थ के रूप में ही होती है। मूल शक्ति पदार्थ तत्त्व को जन्म देकर पदार्थ में ही सो जाती है, उसके आगे नहीं बढ़ती, वहीं पर स्थिर हो जाती है। यही हम लोगों के जीवन का विकास-क्रम है। हम परम तत्त्व से पदार्थ की इस अवस्था में आए हैं। परम तत्त्व से पदार्थ की अवस्था में आने पर ही जीवन का बोध होता है, और हमारे शरीर के अंदर जितने भी ट्रांसफॉर्मर मतलब चक्र हैं, वे जीवन के अलग-अलग व्यवहारों को जन्म देते हैं।

## मूलाधार चक्र

मूलाधार चक्र के क्षेत्र में मनुष्य अपने जीवन में स्थिरता की खोज करता है। उसके जीवन में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है, उस असुरक्षा को दूर कर वह अपने जीवन में स्थिरता लाना चाहता है। उसे भय होता है, वह भय से मुक्त होकर अपने जीवन में शान्ति लाना चाहता है। पदार्थ से जुड़े सभी नकारात्मक और तामसिक व्यवहारों का सम्बन्ध मूलाधार चक्र के साथ रहता है। आपके जीवन में परिवार, सम्पत्ति, समाज या किसी परिस्थिति के कारण जो असुरक्षा और भय की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं वे सभी मूलाधार के अनुभव हैं। लोग पूछते हैं, चक्रों का अनुभव कैसे हो सकता है, चक्रों को हम कैसे समझ सकते हैं, क्या केवल ऊर्जा के रूपान्तरण के समय ही चक्र का अनुभव होता है? नहीं। हर चक्र में हम जो मानसिक अवस्था प्राप्त करते हैं वह उसके एक स्वरूप को निश्चित करती है।

पृथ्वी तत्त्व का सम्बन्ध असुरक्षा की भावना और स्थिरता के अभाव से है। इसका जो सकारात्मक स्वरूप होता है, जिसे हम कहते हैं कि चक्र

जग गया उसका अर्थ होता है कि आपके जीवन से असुरक्षा और भय की भावना समाप्त हो गई है, आपने असुरक्षा और भय की अवस्था पर विजय प्राप्त कर ली है। तब मन एक नकारात्मक बंधन, परिस्थिति और अनुभव से मुक्त होकर एक सकारात्मक अनुभव को प्राप्त करता है जिसमें असुरक्षा और भय नहीं रहते। तब शक्ति मूलाधार से ऊपर बढ़ती है और स्वाधिष्ठान में आती है, जिसे आप कहते हैं कि कुण्डलिनी का जागरण हो गया।

## स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान चक्र अचेतन मन और जल तत्त्व का प्रतीक है। समुद्र में गोता लगाने वाले या समुद्र के बारे में जानकारी रखने वाले लोगों को यह मालूम होगा कि केवल समुद्र की ऊपरी सतह में सूर्य का प्रकाश रहता है, लेकिन जैसे-जैसे आप नीचे गहराई में जाते हैं सूर्य का प्रकाश धूमिल हो जाता है और नीचे केवल अंधकार ही रहता है। वहाँ पर कोई सीमा रेखा नहीं रहती कि यहाँ पर प्रकाश है और यहाँ पर अंधकार। गोताखोर अपने अनुभव के द्वारा ही जान सकता है कि जल में कितनी दूर तक सूर्य का प्रकाश आता है, कितनी दूरी के बाद प्रकाश धूमिल हो जाता है और कब अंधकार आरम्भ होता है।

इसी तरह हमारे मन के चेतन, अवचेतन और अचेतन आयामों के बीच भी कोई सीमा रेखा नहीं है। चैतन्यता का मतलब होता है जहाँ पर बुद्धि का प्रकाश पहुँचे। जब तक बुद्धि का प्रकाश है मनुष्य चैतन्य और सजग रहता है, अपने बारे में जानने और दूसरों को समझने का प्रयास करता है, संसार में संलग्न होता है। अगर बुद्धि का प्रकाश नहीं है तो चैतन्यता भी नहीं होगी, यह जानकारी भी नहीं होगी कि हम क्या कर रहे हैं। उस समय स्थिति जड़ भरत जैसी होती है, जो बैठा रहता है लेकिन शरीर की सुध-बुध नहीं रहती। न हलचल करता है, न क्रिया करता है, पत्थर की भाँति एक स्थान पर स्थिर रहता है। मतलब यह जड़ता की अवस्था है जिसमें गति या क्रिया नहीं होती है। बुद्धि का प्रकाश जहाँ तक पहुँचता है वहाँ तक हमको ज्ञान का अनुभव होता है और जहाँ बुद्धि की पहुँच नहीं है, वहाँ पर जड़ता का अनुभव होता है, ज्ञान का नहीं।

जब आप टॉर्च लेकर किसी अंधेरे कमरे में प्रकाश उत्पन्न करते हैं तो कमरे का कुछ हिस्सा प्रकाशित होता है। टॉर्च का प्रकाश मुख्य रूप से एक घेरे में ही सीमित रहता है। जहाँ तक टॉर्च का प्रकाश पड़ रहा है वही आपकी बुद्धि और ज्ञान का आधार बनता है, क्योंकि उसी को आप देख पाते हैं। जहाँ पर अंधकार रहता है वहाँ आप नहीं देख पाते हैं। इसी प्रकार बुद्धि भी इस जीवन में आकर मन के एक सीमित क्षेत्र को ही प्रकाशित करती है। जो क्षेत्र प्रकाशित होता है उसे कहते हैं चैतन्यता, जहाँ पर ज्ञान है, लेकिन जब बुद्धि धूमिल पड़ने लगती है

तब आपका अपनी स्पष्टता से संपर्क समाप्त हो जाता है और कभी-कभी भ्रांति की स्थिति भी आ जाती है। मैं जो सोच रहा हूँ क्या वह सही है, मैं जो चाहता हूँ क्या वह गलत है, मैंने जो किया क्या वह उचित है, मैं जो करना चाहता हूँ क्या वह अनुचित है—जब इस प्रकार के द्वन्द्व मन में उत्पन्न होते हैं तो यह इस बात का संकेत है कि बुद्धि का प्रकाश उस अवस्था तक नहीं पहुँच रहा है, क्योंकि अगर बुद्धि का प्रकाश वहाँ पहुँच जाए तो द्वन्द्व होगा ही नहीं। अवचेतन की अवस्था में बुद्धि का प्रकाश धूमिल हो जाता है और जिस क्षेत्र में बुद्धि का प्रकाश बिल्कुल ही नहीं पहुँचता उसे कहते हैं अचेतन। इसके पश्चात् एक और स्थिति आती है जिसे कहते हैं तुरीयावस्था। तुरीयावस्था के स्वरूप के विषय में आपको एक कहानी के माध्यम से समझाता हूँ।

एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य, गार्गी से प्रश्न करते हैं, मनुष्य किसके प्रकाश से अपना कार्य करता है? गार्गी उत्तर देती है कि सूर्य के प्रकाश में मनुष्य अपने सभी कर्मों का निर्वाह करता है। फिर याज्ञवल्क्य पूछते हैं, अगर सूर्य का प्रकाश न रहे तब मनुष्य अपने कर्मों का निर्वाह कैसे करेगा? गार्गी कहती है यदि सूर्य का प्रकाश न रहे तो चन्द्रमा के प्रकाश में मनुष्य अपने कर्मों का निर्वाह कर सकता है। पुन: याज्ञवल्क्य पूछते हैं, अगर चन्द्रमा का प्रकाश भी न रहे तो? गार्गी कहती है कि तारों के आलोक में मनुष्य अपना जीवन जी सकता है। अंत में याज्ञवल्क्य पूछते हैं, यदि तारे भी न रहे तो किसके प्रकाश में तुम अपने कर्म करोगे, अपना जीवन जी सकोगे? तब गार्गी कहती है अगर चारों तरफ अंधकार है और बाहर में कोई प्रकाश नहीं है, उस समय मनुष्य केवल आत्मा के प्रकाश से अपने कर्मों को सम्पादित कर सकता है, अपने जीवन का निर्वाह कर सकता है। आत्मा का यह प्रकाश ही तुरीयावस्था है। चेतन आयाम में सूर्य का प्रकाश होता है, अवचेतन में चन्द्रमा का प्रकाश रहता है, अचेतन में सितारों का आलोक रहता है और तुरीया में आत्मा का प्रकाश रहता है। ऐसा हमारे उपनिषदों ने कहा है और इसी को आप अपने मन की चार अवस्थाओं से जोड़ोगे तो बात समझ में आ जाएगी।

आत्मा का प्रकाश केवल मनुष्यों को प्राप्त होता है, अन्य जीवों को नहीं। पशुओं में मनुष्यों जैसी बुद्धि नहीं होती। जो चैतन्यता बुद्धि के माध्यम से मिलती है वह मनुष्य मात्र को ही प्राप्त है। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है कि यही एक गुण है जो ईश्वर ने केवल मनुष्य को प्रदान किया है, किसी अन्य जीव को नहीं। बुद्धि के द्वारा मनुष्य अपने निर्णय लेने, परिस्थितियों से समझौता करने या विरोध करने और जीवन के सभी कर्मों को सम्पादित करने में सक्षम होता है। मनुष्य के जीवन में अगर बुद्धि का उपयोग न हो तब फिर जीवन में पशुता आती है। मनुष्य का स्वभाव और वृत्ति पशुओं के समान हो जाती है। इसलिए बुद्धि को एक ऐसा माध्यम माना गया है जिसके द्वारा मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके उसके प्रकाश में आगे बढ़ता है।

स्वाधिष्ठान चक्र में बुद्धि का अभाव होता है क्योंकि यह अचेतन का स्थान है। अचेतन में क्या है? कबीरदास जी कहते थे–'इस घट भीतर सात समुन्दर' मतलब इस मानव शरीर में सात समुन्दर हैं जिनमें रत्न और हीरे हैं। कबीरदास जी आध्यात्मिक रहस्यों को प्रतीकात्मक रूप से समझाते थे। वे जो भी समझाते थे, सत्य है। स्वाधिष्ठान चक्र ही सात समुद्रों का संग्रह है जिसमें रत्न छिपे हुये हैं। स्वाधिष्ठान चक्र अचेतन मन का प्रतीक है और कबीरदास जी के कहने का तात्पर्य है कि हमारे अचेतन मन के भीतर बहुत कुछ छिपा हुआ है।

योग दर्शन के अनुसार अचेतन मन में ही आहार, निद्रा, भय और मैथुन की मूल प्रवृत्तियों का जन्म होता है। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण इच्छा, वासना तथा अचैतन्यता की स्थिति पनपती और विकसित होती है। इसीलिये इनको समझना या इनके द्वारा उत्पन्न समस्याओं का निराकरण करना किसी भी मनोवैज्ञानिक के लिये आज तक संभव नहीं हुआ है। योग दर्शन के अनुसार अचेतन मन में प्रारब्ध कर्म भी छिपे रहते हैं। ये कर्म पूर्व जन्मों से आपके साथ रहते हैं और समय-समय पर प्रकट होकर आपके जीवन को बनाते या बिगाड़ते हैं। हम किस जन्म के कर्म का भोग कर रहे हैं, वास्तव में यह किसी को भी ज्ञात नहीं होता, परंतु इतना मालूम है कि कर्मों का भोग और मूल प्रवृत्तियों का जन्म स्वाधिष्ठान चक्र में होता है। जब शक्ति ऊर्ध्वगामी होकर स्वाधिष्ठान चक्र को पार करती है तब हम मूल प्रवृतियों और कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और फिर शक्ति मणिपुर चक्र में प्रवेश करती है।

## मणिपुर चक्र

मणिपुर चक्र अग्नि तत्त्व का क्षेत्र है और राजसिक गुणों का केन्द्र है। रजोगुण का क्या काम होता है? रजोगुण एक क्रिया को निश्चित करता है। हमारी परम्परा में तीन गुणों की चर्चा होती है—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। सांख्य दर्शन के अनुसार तमोगुण का मतलब होता है स्थिति, रजोगुण का मतलब होता है क्रिया और सत्त्वगुण का मतलब होता है प्रकाश। इन तीन गुणों के परस्पर सम्बन्ध और विकास-क्रम को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लिजिए कि एक कुम्हार है जिसे मिट्टी के कुछ पात्र बनाने हैं। जब कुम्हार जमीन से मिट्टी लेता है तब मिट्टी का कोई आकार या निश्चित रूप नहीं होता। मिट्टी के उस मूल रूप से किसी भी रूप का निर्माण किया जा सकता है। जब तक मिट्टी का अपना कोई रूप नहीं है तब तक वह सत्त्वगुणी है, लेकिन जब कुम्हार उस मिट्टी में पानी डालता है, उसको मसलता है, पात्र निर्माण के लिये उसे तैयार करता है और फिर जब तैयार मिट्टी से पात्र बनाना आरम्भ करता है तब वह स्थिति होती है रजोगुण की, मतलब क्रियाशीलत्व की। और जब मिट्टी से पात्र तैयार हो जाता है, एक निश्चित रूप प्रकट हो जाता है तब इसे तमोगुणी स्थिति के रूप में जानते हैं जिसे स्थितिशीलत्व भी कहा जाता है।

स्वयम् को जानो योगोत्सव
Know Yourself Yogotsav
ल्ली महानगर के अधिवासियों तथा बिहार योग विद्यालय द्वारा आयोजित
Jointly organized by: Citizens of Delhi and Bihar School of Yoga

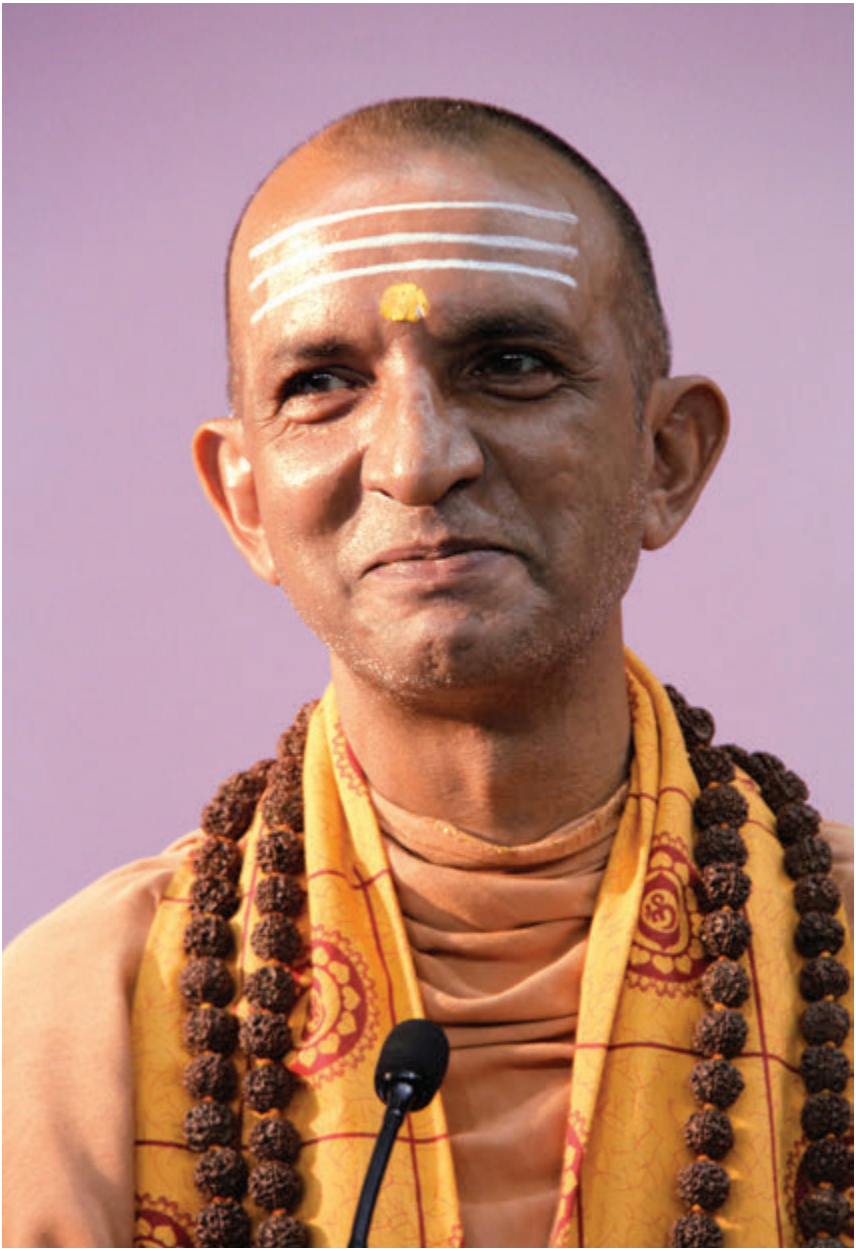

हम सब तमोगुणी हैं क्योंकि हमारा एक निश्चित रूप, पहचान, नाम और गुण है। नाम, रूप और गुण—जब तीनों एक साथ होते हैं तब तमोगुण की अवस्था होती है। रूप और नाम जब एक साथ होते हैं तब रजोगुण की अवस्था होती है। और जब गुण अकेला है, उसका कोई रूप नहीं, कोई नाम नहीं, तब वह सत्त्वगुण की अवस्था होती है। इन उदाहरणों से मैं तीनों गुणों के भेद को समझाने का प्रयास कर रहा हूँ।

मणिपुर चक्र, जो अग्नि तत्त्व का प्रतीक है, उसे रजोगुण का केन्द्र माना गया है और इसका स्वभाव है क्रियाशीलत्व। जब हम साधना के माध्यम से कुण्डलिनी शक्ति को मणिपुर चक्र से ऊपर ले जाते हैं तब मनुष्य गुणों पर विजय प्राप्त करता है और अपने आपको सत्त्वगुण में स्थापित करता है। उसके बाद शक्ति हृदय प्रदेश में स्थित अनाहत चक्र में पहुँचती है।

## अनाहत चक्र

अनाहत चक्र वायु तत्त्व का प्रतीक है, जिसमें मनुष्य सार्वभौमिक संवेदनशीलता का अनुभव करता है। यह संवेदनशीलता प्रेम, करुणा और दया जैसे हृदय के कोमल भावों को प्रकट करती है। अनाहत चक्र में आप इन कोमल भावों से युक्त होते हैं। मनुष्य के भाव तो हमेशा कठोर ही रहते हैं। वे कोमल तभी होते हैं जब मनुष्य दूसरे व्यक्ति की अच्छाई को पहचान पाता है। जब तक आप दूसरे व्यक्ति की अच्छाई को नहीं पहचानेंगे, आप उस व्यक्ति के प्रति कभी भी कोमल नहीं हो पायेंगे। हमेशा एक दूरी रहेगी, उसके साथ जुड़ नहीं पायेंगे। कोमलता की प्राप्ति और कठोरता की समाप्ति वायु तत्त्व या अनाहत चक्र की जागृति का परिणाम होता है। उसके बाद अगला चक्र है विशुद्धि।

## विशुद्धि चक्र

विशुद्धि का अर्थ होता है वह क्षेत्र जहाँ पर सब कुछ शुद्ध हो जाए। इसलिए जब शक्ति विशुद्धि चक्र में पहुँचती है तब हमारे विचार, वाणी एवं व्यवहार के दोष समाप्त हो जाते हैं और हमारे जीवन के सभी कर्म अच्छे तरीके से सम्पन्न होने लगते हैं। ये कर्म शुद्ध और पवित्र होते हैं, जिनसे हमेशा दूसरों का उत्थान होता है, दूसरों को सहायता मिलती है, दूसरों से सम्बन्ध जुड़ता है। तब प्रेम एवं करुणा का प्रसार मनुष्य के व्यवहार में स्वत: होने लगता है। इस प्रकार के कर्म करने से मनुष्य की भावना कोमल बनती है, और जिसकी भावना कोमल होती है वह सबका प्रिय होता है। जिसकी भावना कठोर है उसे कोई पसन्द नहीं करता। विशुद्धि चक्र में पहुँचने के बाद हमारे मन के सभी विकल्प समाप्त हो जाते हैं, केवल शुद्धता, पवित्रता, संतुलन, शान्ति और सामंजस्य की अवस्था शेष रहती है। विशुद्धि के बाद शक्ति आज्ञा चक्र में पहुँचती है।

## आज्ञा चक्र

आज्ञा चक्र में मनुष्य का पहला सम्पर्क होता है अपनी अन्तरात्मा के साथ जिसे 'गुरुतत्त्व' भी कहते हैं। आज्ञा चक्र इसी गुरुतत्त्व का प्रतीक होता है और यह भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत् के बीच का द्वार भी है। आज्ञा चक्र के एक तरफ संसार है और दूसरी तरफ ईश्वर। आज्ञा चक्र बीच में एक द्वार का काम करता है जहाँ गुरुतत्त्व का वास होता है। गुरुतत्व को प्राप्त कर लेने के बाद जीवन का अंधकार दूर हो जाता है और वह कभी वापस नहीं आता, मतलब जीवन में अज्ञान और अविद्या का कोई स्थान नहीं रहता। मात्र पूर्णता का अनुभव होता है। आज्ञा चक्र के बाद शक्ति सहस्त्रार चक्र में पहुँचती है।

## सहस्त्रार चक्र

सहस्त्रार में पुन: शक्ति और शिव का संयोग होता है। इस प्रकार आध्यात्मिक यात्रा नीचे से ऊपर की ओर होती है और भौतिक यात्रा ऊपर से नीचे की ओर। आध्यात्मिक यात्रा के अंत में जब शक्ति सहस्त्रार चक्र में पहुँचती है और शिव तत्त्व मतलब चेतना से मिलती है तब ईश्वरत्व की अनुभूति होती है। ईश्वरत्व की अनुभूति शिव और शक्ति के संयोग का परिणाम होती है जो सहस्त्रार चक्र में घटित होता है।

बहुत-से लोग योग को एक नास्तिक विधि मानते हैं क्योंकि योग में भगवान की अवधारणा नहीं है। योग में न राम का नाम आता है, न कृष्ण का, न ही किसी अन्य देवी-देवता का, बल्कि योग सूत्रों में परमात्मा को केवल एक ही नाम से संबोधित किया गया है और वह नाम है 'ईश्वर'। ईश्वर वह तत्त्व है जो कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। योग सूत्रों में कहा गया कि ईश्वर की यह विशेषता है कि वह दु:ख और सुख के अनुभव से परे है। जो सुख और दु:ख के अनुभव से परे है, उसे ही परमात्मा कहते हैं और जो सुख और दु:ख का अनुभव करता है उसे परमात्मा नहीं, जीवात्मा कहते हैं।

सहस्त्रार में जब शिव-शक्ति का संयोग होता है तब ईश्वरत्व की, मतलब अपने जीवन की सनातनता का बोध होता है। तब आप पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि मैं अजर और अमर हूँ, किसी भी काल में मेरा नाश नहीं होता है। यही ज्ञान भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्धभूमि में दिया था– 'तुम किसकी चिंता करते हो! अगर शरीर की चिंता करते हो तो शरीर हमेशा परिवर्तित होता है। जो परिवर्तित होता है उसका नाश भी होता है और जन्म भी। उस शरीर से, उस भौतिक रूप से तुम सम्मोहित क्यों होते हो? अपने आपको मुक्त रखो।'

*–19 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली*

# सनातन धर्म का संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

*दिल्ली में 4 नवम्बर 1950 को स्वामी शिवानंद जी ने बिरला मंदिर के पण्डाल में भक्तों को इस प्रकार सम्बोधित किया–*

आज सनातन धर्म सभा के प्रबुद्ध सदस्यों के बीच खुद को पाकर मैं बहुत खुश हूँ। सनातन धर्म सभा ने मनुष्य समाज को महान सेवा प्रदान की है। श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी ने पंजाब और अन्य स्थानों में अपूर्व कार्य किया है। उन्होंने अनेकों विद्यालय भी खोले हैं। चूँकि वे भगवद्भाव से ओतप्रोत हैं, उनका हृदय सत्त्व से पूर्ण है और वे अथक परिश्रम कर पाते हैं। साधारण व्यक्ति ऐसा महान् काम नहीं कर पाएँगे। यह भगवद् कृपा है। श्री गोस्वामीजी को भगवान आरोग्य और दीर्घायु प्रदान करें ताकि वे लोक-संग्रह का कार्य निरंतर जारी रखें।

सनातन धर्म और भगवान एक ही हैं। भगवान धर्म-स्वरूप हैं। धर्म पर ही दुनिया टिकी है। सूर्य, चन्द्र और तारों को उनकी जगह पर धर्म ने ही रखा है।

धर्म के कई अर्थ और अभिप्राय होते हैं। धर्म के अंतर्गत कुछ आचार-संहिताएँ किसी विशेष युग या काल में ही लागू होती हैं। फिर कुछ ऐसी हैं जो किसी विशेष देश या स्थान में लागू होती हैं। जबकि अन्य विश्वव्यापी और सर्वमान्य होती हैं। यम और नियम सार्वभौमिक हैं। ये देश और काल से अप्रभावित रहते हैं। सनातन धर्म शाश्वत धर्म है। यह वेदों पर आधारित है। सनातन धर्म के सिद्धांत हर किसी पर हर काल में लागू होते हैं। यह सदाचार के मौलिक आधार को इंगित करता है।

## वर्णाश्रम धर्म

वर्णाश्रम धर्म सनातन धर्म का ही अंग है। यह भी सार्वभौमिक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सिर्फ भारत के ही सामाजिक वर्ग नहीं हैं। हर देश और हर युग में ब्राह्मण हुए जो उस जगह के शास्त्रों का पठन-पाठन किया करते थे तथा अपना पूरा समय धर्म के अनुपालन और शिक्षण में व्यतीत करते थे। क्षत्रिय शासन करने वालों का वर्ग था, वैश्य व्यवसायियों का वर्ग था और शूद्र सेवकों का वर्ग था। यह समाज का ऐसे चार वर्गों में चिरकालीन विभाजन है जो एक-दूसरे का परस्पर सहयोग करते हैं।

वर्ण व्यवस्था जरूरी है। वर्तमान युग की परेशानियों की जड़ इन्ही वर्णों में व्याप्त भ्रांति है। वर्णों के दायित्वों के आपस में उलझने से लोगों के बीच अस्वस्थ होड़ मची है और कृत्रिम जीवनशैलियाँ उभरकर सामने आ रही हैं। अगर वर्णों का युक्तिसंगत विभाजन बना रहे तो संसार में शांति बनी रहेगी और समाज का उत्थान होगा।

सभी मनुष्य बराबर हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों। हर कोई एक ही दिव्य तत्त्व का प्रतिरूप है। हर कोई नर आवरण में छिपा नारायण है। इसे पहचानना जरूरी है। कोई भी जाति या वर्ण किसी अन्य से ऊँचा या नीचा नहीं है। इसकी स्पष्ट अनुभूति होनी चाहिये। जब एक वर्ण स्वयं को दूसरों से बेहतर समझने लगता है तब असंतुलन और असामंजस्य की स्थिति पैदा होती है। सबके बीच आपसी प्रेम, भाईचारा और सामंजस्य होना चाहिये। हर किसी को अपने नियत धर्म और दायित्वों का पालन करना चाहिये और इस प्रकार समाज के कल्याण में अपना योगदान देना चाहिए। इसी मार्ग से हर मनुष्य अन्ततः मोक्ष प्राप्त करेगा। भगवान किसी एक व्यक्ति की जागीर नहीं हैं। अपना धर्म अच्छे से निभाओ और साथ ही अपना पूरा मन ईश्वर में लगा दो, तुम्हें वे अवश्य प्राप्त होंगे।

भगवान ने यह निश्चित तौर पर कहा है कि हर किसी को अपने धर्म के पालन में रत रहना चाहिये– *स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।* स्वधर्म-पालन की अपनी एक महिमा और भव्यता है, जबकि दूसरों के धर्म और कर्त्तव्य में घुसपैठ करना असंतुलन एवं असामंजस्य की जड़ है। अनेक देशों का इतिहास भगवान के इस महान वचन की सत्यता को साबित करता है।

इसी तरह से आश्रम व्यवस्था भी सार्वभौमिक है। पूरे विश्व में ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी वर्ग है। साथ ही गृहस्थ अर्थात् विवाहित लोग भी हैं। वानप्रस्थ अर्थात् परिवार से अनासक्त, दिव्य चिंतन में लीन सेवानिवृत्त लोग भी सब जगह हैं। अंत में है संन्यासियों या त्यागियों का आश्रम। हर पुरुष और नारी के लिए ये चार आश्रम आवश्यक हैं। जब समाज में वर्णसंकरता आने लगी तब आश्रम व्यवस्था भी नष्ट होने लगी। आज के युग में समस्त संसार में तुम्हें एक ही वर्ण मिलेगा, शूद्र का, और एक ही आश्रम मिलेगा, गृहस्थ का। रोज़ी-रोटी कमाने के संघर्ष में ब्राह्मण वर्ण प्रायः लुप्त हो गया है। आज के ब्राह्मण सिर्फ नाम के ब्राह्मण हैं, अपने ब्राह्मण-धर्म का निर्वाह करने के लिये उनके पास न तो समय है न अवसर। क्षत्रिय वर्ण का भी आज कोई अस्तित्व नहीं। हाँ, युद्ध की स्थिति में रातोंरात हर किसी को क्षत्रिय बनना पड़ता है। यहाँ-वहाँ कुछ वैश्य हैं, पर ज्यादातर संख्या नौकरों और सेवकों की है, चाहे वे सरकार के हों या व्यावसायिक संस्थाओं के।

आश्रमों के साथ भी ऐसा ही है। ब्रह्मचारी हैं तो सही, पर उन्हें अपने विशेष धर्मों और दायित्वों की कोई जानकारी नहीं है। वे सिर्फ छात्रों या विद्यार्थियो की तरह रहते हैं, वास्तविक ब्रह्मचारियों की तरह नहीं। उनमें संयम और अनुशासन नहीं के बराबर है। गृहस्थाश्रम केवल बेलगाम भोग-विलास का समय रह गया है। यह अब सद्गुणों के विकास का क्षेत्र नहीं रहा। इन्द्रिय भोगों के प्रति आसक्ति इतनी बढ़ गई है कि यह आश्रम मृत्युपर्यन्त चलता है। एक वृद्ध व्यक्ति भी अपने अंतिम समय तक अपने घर-परिवार से चिपका रहता है। श्री गोस्वामीजी जैसे कुछ

चुनिंदा महात्मा ही पारिवारिक आसक्ति को त्याग निवृत्ति का पथ चुनते हैं। धर्म इनमें शरण लेकर इनकी रक्षा करता है, *धर्मो रक्षति रक्षितः*।

इस अव्यवस्था और अराजकता की जड़ मनुष्य की इन्द्रिय-विषयों के प्रति आसक्ति है। मनुष्य भौतिकता में डूबा है, उसे धर्म की कोई होश नहीं। उसने स्वयं ही अपने रक्षक धर्म को अपने जीवन से बाहर फेंक दिया है। इसलिये वह कष्ट भोगता है। धर्म के संरक्षण और उत्थान में ही विश्वशांति निहित है। वर्णाश्रम धर्म का अपने मौलिक स्वरूप में पुनर्स्थापन होना चाहिये।

## पाश्चात्य जगत् में योग के प्रति रुचि

पश्चिमी दुनिया को सामान्यत: भौतिकवाद का गढ़ माना जाता है, पर आज अमेरिका और यूरोपीय देशों में भी हजारों लोग योगाभ्यास करते मिलेंगे। वहाँ के सैकड़ों लोग मुझे नियमित तौर पर पत्र लिखते हैं। वे सभी गंभीर, परिश्रमी और सतर्क साधक हैं। चाहे स्वीडन चले जाओ या स्टॉकहोम, कितनी सारी महिलायें योगासनों का अभ्यास कर रही हैं, कितने लोग *ॐ नमः शिवाय* मंत्र का जप कर रहे हैं। लातविया में अनेक लोगों ने दिव्य जीवन संघ की शाखायें बना ली हैं और ईशु की पूजा के साथ-साथ श्रीकृष्ण के द्वादशाक्षर मंत्र, *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय* का जप-कीर्तन करते हैं। साथ ही पश्चिम में ऐसे अनेकों मठ हैं, जहाँ के साधु और साध्वी कठिन तप करते हैं। पर भारत, जो आध्यात्म का गढ़ है, जहाँ ईश्वर-साक्षात्कार को हमेशा मनुष्य जीवन का लक्ष्य माना गया है, आज कई नास्तिक मतों और विचारधाराओं से घिरा है। आज भारतवासी भौतिकवाद के मायाजाल में फँसे हैं। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। सनातन धर्म सभा और अन्य आध्यात्मिक संस्थायें समाज में धर्म का संदेश प्रचारित कर मानवता की महान् सेवा कर रही हैं।

स्वामी शिवानंदजी ने फिर ईश्वर-साक्षात्कार की विभिन्न साधनाओं पर विस्तार से चर्चा की और इस बात पर जोर दिया की हर किसी को योगाभ्यास करने का अधिकार और आवश्यकता है, 'एक मेहतर भी योगाभ्यास कर सकता है, और एक वाहनचालक भी।' अपने सम्बोधन के बाद स्वामीजी ने कई प्रेरक गीत और कीर्तन भी गाये।

# ईश्वर की अनुभूति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण जब एक हो जाते हैं और उनमें कोई भेद नहीं होता, तब वे अक्षय ऊर्जा के रूप में प्रकट होते हैं और इसी ऊर्जा को ईश्वर या परमतत्त्व कहते हैं। मतलब जब ये तीनों गुण एक साथ हो जाते हैं तब ईश्वर की उपस्थिति का बोध होता है। यहाँ ईश्वर या परमतत्त्व का अर्थ है जिसका कभी क्षय, विघटन या नाश नहीं होता।

अब प्रश्न उठता है कि यह अक्षय क्यों है, इसका नाश क्यों नहीं होता? इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि किसी पेड़ की एक टहनी को आप अपने हाथ से आराम से तोड़ देते हैं, लेकिन दो टहनियों को तोड़ने में आपको कठिनाई होगी और चार-पाँच टहनियों को तो आप निश्चित रूप से तोड़ नहीं पाएँगे। मतलब जितनी अधिक टहनियाँ साथ आ जाएँ उनको तोड़ने में उतनी अधिक परेशानी होगी, क्योंकि संगठन में शक्ति होती है। इसी प्रकार ईश्वरीय ऊर्जा तीन गुणों का संगठन है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए उस ऊर्जा या उस परमतत्त्व का क्षय, विघटन या नाश नहीं होता।

ईश्वर आपकी इच्छा के अनुसार एक नाम, एक रूप और एक गुण को लेकर प्रकट होते हैं, और फिर आप उस परमतत्त्व को अपनी भावना और बुद्धि के अनुसार एक विशेष रूप में देखते हैं। कहा भी गया है, *जिन्ह कें रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी*। मतलब आप अपनी भावना के अनुरूप ही अपने आराध्य को देखते हैं। जब रामजी धनुष तोड़ने के लिये सीता जी के स्वयंवर में पहुँचे तब योगियों ने उन्हें प्रकाश रूप में देखा, शत्रुओं ने उन्हें एक सशक्त योद्धा के रूप में देखा, युवतियों ने उन्हें अपने प्रेमी के रूप में देखा, माताओं ने उन्हें अपने संतान के रूप में देखा। वहाँ जितने भी लोग थे, सभी ने रामजी को अपनी-अपनी भावना के अनुसार देखा। यह प्रसंग एक संकेत देता है कि जिसकी जैसी भावना रहती है वह अपने आराध्य को उसी रूप में देखता

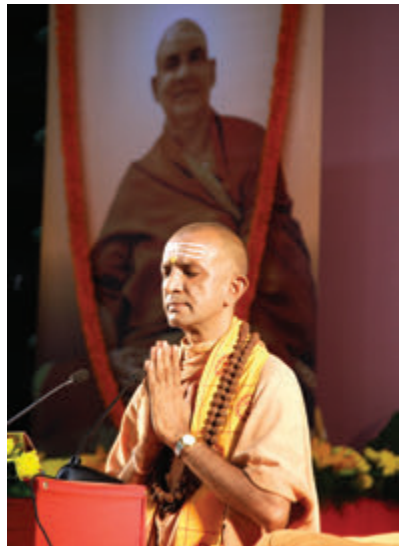

है। भावना के अनुसार ही ईश्वर निराकार से साकार रूप ग्रहण करते हैं। लेकिन जब तक भावना नहीं है, निराकार कभी साकार नहीं होगा।

हम सभी परमतत्त्व से उसी प्रकार घिरे हुए हैं जिस प्रकार मछली पानी से घिरी रहती है। लेकिन मछली को यह मालूम नहीं रहता कि वह पानी में है और पानी से घिरी है। वैसे ही हर मनुष्य ईश्वर में रहता है, लेकिन उसे मालूम नहीं रहता कि वह ईश्वर में वास करता है। मनुष्य सोचता है कि ईश्वर मुझसे से अलग हैं, इस कारण से वह ईश्वर की खोज करता है, ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है। ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र में कहा गया है–

*ॐ ईशावास्यमिदँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।*
*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥*

मतलब यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर का वास स्थान है और तुम उस स्थान में रहते हो। तुम्हें भोग के लिये जो भी दिया गया है, उसे तुम ईश्वर प्रदत्त प्रसाद मानकर भोग करो। यह मात्र दर्शन या चिंतन नहीं है, बल्कि मनीषियों ने यह समझाने का प्रयास किया है कि हमारा सम्पूर्ण जीवन ईश्वर में ही रमा हुआ है। उस परमतत्त्व से ही हमारी उत्पत्ति हुई है और अन्त में उसी परमतत्त्व में हमें विलीन भी होना है। हमारे और उस परमतत्त्व के बीच कोई भेद नहीं है।

लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है। यदि लकड़ी गीली भी हो जाए तो भी उस लकड़ी में अग्नि प्रज्वलित हो जायेगी, भले ही धुँआ थोड़ा ज्यादा निकले। चाहे लकड़ी गीली हो या सूखी, उसमें अग्नि तत्त्व छिपा रहता है। हम यह नहीं कह सकते कि अग्नि लकड़ी के किसी विशेष भाग में है, बाकी भाग में नहीं है। अगर हम लकड़ी के किसी भाग को जलायेंगे तो पूरी लकड़ी जल जाएगी, और जब तक लकड़ी जलाई नहीं जाती तब तक अग्नि तत्त्व का बोध नहीं होता है।

इसी तरह मनुष्य हमेशा ईश्वरीय तत्त्व से ओत-प्रोत रहता है, लेकिन उसे जान नहीं पाता है क्योंकि मनुष्य स्वयं को जलाना नहीं जानता है। जो साधना और तपस्या के माध्यम से स्वयं का जलाता है, अपने व्यवहारों को परिवर्तित करता है वह अपने भीतर परमतत्त्व की अनुभूति कर पाता है। यही सभी योगांगों का विषय भी है। स्वयं को जलाने का मतलब अपने शरीर पर पेट्रोल डालकर माचिस लगाना नहीं, बल्कि हम अभी जिस परिस्थिति में हैं, उसे परिवर्तित करें, हम जिस मानसिकता में हैं, उसे बदलें, हमारे जीवन में जो संकीर्ण विचारधारा है उसे समाप्त कर एक नई मानसिकता को धारण करें, अपने अंदर विद्यमान सात्त्विक, राजसिक और तामसिक गुणों को संतुलित, व्यवस्थित एवं संगठित करने का प्रयास करें ताकि हमें भी इस जीवन में ईश्वर की अनुभूति हो सके।

*–19 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली*

*संस्मरण*

# अनुभव की पूँजी

*संन्यासी मंत्रप्रेम, दिल्ली*

वर्षों से योग साधक और समाज के कई वर्ग एक ऐसे व्यक्ति की बाट जोह रहे थे जो योग के विषय में फैली भ्रांतियों का निराकरण कर सके, उसके विकृत एवं व्यापारिक हो रहे रूप को रोक सके, पारम्परिक एवं वास्तविक योग को पुनर्व्यवस्थित कर सके तथा योग साधकों को योग के सही तरीके बताकर उनका वास्तविक मार्गदर्शन कर सके। इसी उद्देश्यपूर्ति हेतु 'स्वयं को जाने योगोत्सव' भारत यात्रा 2014 का कार्यक्रम चलाया गया। इसी के अन्तर्गत दिल्ली में 18 से 21 सितम्बर तक संचालित योग कार्यक्रम के कुछ अनुभव साझा करने जा रहा हूँ।

मैं सदैव सोचता था कि कभी ऐसे विचारों या मतों से प्रभावित नहीं होना चाहिये जिनकी जड़ें अनुभव में न हों। अपने गुरु, स्वामी निरंजनानन्द जी से जुड़ने और दीक्षा लेने के साथ ही कई अनुभूतियाँ और जीवन में बदलाव होने लगे, लेकिन मैं उनकी चर्चा नहीं करूँगा। सबसे निकटतम अनुभव 'स्वयं को जानो योगोत्सव' दिल्ली यात्रा 2014 में हुआ।

आश्रम से जुड़े लगभग बारह साल हो गये हैं। बिहार योग भारती से ही चार महीने का सर्टिफिकेट कोर्स किया तथा योग मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री भी प्राप्त की। इस दौरान कई योग शिक्षकों और संन्यासियों से योगाभ्यास सीखा, लेकिन पहली बार यहाँ स्वयं गुरुजी द्वारा संचालित योग कक्षा में भाग लेने का मौका मिला। हालाँकि कार्यक्रम स्थल में मेरी सेवा थी, फिर भी इस मौके को खोना नहीं चाहता था। इसलिये बीच-बीच में कक्षा में भाग जाया करता।

जो अनुभव गुरुजी द्वारा कराई गई योग कक्षा में हुआ वह अविस्मरणीय है। उनके द्वारा कराये गये प्राणायाम और योगनिद्रा इतने प्रभावी रहे कि पिछले पाँच-छः दिनों के कर्मयोग की थकान छूमंतर हो गई। शरीर और मन तो मानो रहा ही नहीं, अतीन्द्रिय घटनायें घटित होती रहीं और मैं साक्षी बना रहा। वास्तव में ऐसी सजगता भी पहले कभी प्राप्त नहीं हुई थी। उनके द्वारा कराये गये अजपाजप से तो आरम्भ में लगा मानो शरीर में बिजली उत्पन्न कर दी गई हो। दिल की धड़कन काफी तेज हो गई, मस्तिष्क में उत्पन्न तरंगें विचलित करने लगीं। फिर धीरे-धीरे सब कुछ शान्त होने लगा। आंतरिक शांति एवं मौन के साथ-साथ रहस्यमय प्राणिक ऊर्जा के संचार का अनुभव होने लगा। पूरे शरीर के अन्दर सुनहरे प्रकाश का आभास होने लगा, मानो पूरा शरीर सुनहरी ऊर्जा का ही बना हो। जब अभ्यास से वापस आया

तो कुछ बोलने का मन नहीं कर रहा था, किसी को हरि ॐ कहने की भी इच्छा नहीं हो रही थी। मन करता कहीं एकान्त में आँखें बंदकर बैठ जाऊँ। वास्तविक, गहन शान्ति का अनुभव हो रहा था।

जो दिल्लीवासी इस कार्यक्रम में भाग लेने आये थे, उनमें से कुछ से मेरा परिचय था। वे भी पूरे कार्यक्रम की काफी तारीफ कर रहे थे। प्रसाद लेने वालों में से एक ने कहा, आपके गुरुजी हृदय की तरह हैं। हृदय हमेशा गैर-हिसाबी होता है। वह कभी लेने की नहीं सोचता, बल्कि हमेशा सोचता रहता है कि कैसे और ज्यादा दिया जाए। ऐसे महान् गुरु के पावन चरणों में प्रणाम, हमें सदैव उनकी कृपा मिलती रहे।

# बचपन में उपनयन संस्कार का प्रयोजन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भारत की प्राचीन परम्परा में आठ वर्ष की अवस्था के बच्चों को उपनयन संस्कार प्रदान किया जाता था, लेकिन वर्तमान समय में लोग अपनी इच्छा से कभी भी उपनयन संस्कार करा लेते हैं। बहुत बार तो शादी के एक दिन पहले अपना उपनयन संस्कार करा लेते हैं और फिर अगले दिन शादी करते हैं। यह सही तरीका नहीं है, क्योंकि परम्परा कहती है कि यह एक संस्कार है, कर्म नहीं है कि हम जनेऊ पहन लें और काम खत्म। संस्कार का मतलब होता है एक शिक्षा को अपने जीवन में आत्मसात् करके उसे अपने आचरण में अभिव्यक्त करना। जब तुम एक शिक्षा को, एक विद्या को, एक आदर्श को अपने कर्म एवं व्यवहार द्वारा व्यक्त करते हो तब वह संस्कार कहलाता है। लेकिन संस्कार के लिये प्रयास भी करना पड़ता है। संस्कार कोई देता नहीं है, संस्कार का निर्माण करना पड़ता है, संस्कार को बनाना पड़ता है। आप कहते हो, हमारा संस्कार कर दीजिये। वह तो एक प्रारंभिक प्रक्रिया है। उसके बाद भवन का निर्माण तो आपको करना है, उस भवन के सौन्दर्य की जिम्मेदारी आपकी है। लोग कहते हैं जनेऊ धारण करना धर्म है। मैं जनेऊ की बात नहीं कर रहा हूँ, न ही जनेऊ के साथ जुड़ी मान्यता की बात कर रहा हूँ। मैं एक संस्कार की बात कर रहा हूँ जिसको कहते हैं उपनयन संस्कार।

## गायत्री मंत्र

इस संस्कार के समय बालक को गायत्री मंत्र दिया जाता है, सूर्य नमस्कार का अभ्यास बतलाया जाता है और नाड़ीशोधन प्राणायाम सिखाया जाता है। बच्चों को विधि-विधान के साथ इन तीन चीजों को सिखलाया जाता है और उनसे कहा जाता है कि इन्हें तुम बारह वर्ष की आयु तक नियमित करो। गायत्री मंत्र का जप करने से प्रतिभा के द्वार खुलते हैं। गायत्री मंत्र की आवश्यकता सबको है, केवल बच्चों को ही नहीं, क्योंकि बच्चों के मन का दरवाजा तो खुला हुआ है। बच्चों का मन स्पंज की भाँति होता है। स्पंज को तुम जहाँ पर भी रख दो वह उस तरल पदार्थ को अपने में सोख लेता है। बच्चों का मन भी उसी प्रकार का होता है। इसलिए बच्चों के लिए शिक्षा को आत्मसात् करना सरल होता है। बड़े होने पर मन के दरवाजे, ग्रहणशीलता के दरवाजे स्वत: बन्द हो जाते हैं और जीवन में ज्ञान के साथ मूर्खता भी आती है। ज्ञान है लेकिन फिर भी मूर्ख हो, उसका मतलब क्या हुआ? यही कि तुमने अपनी प्रतिभा के द्वारों को बन्द कर दिया है, इसलिये ज्ञान को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हो। बुरा नहीं मानिये, आप सबके जीवन में भी यह बात सत्य है।

गायत्री मंत्र बुद्धि और मन के दरवाजों को खुला रखने में सहायता प्रदान करता है। जब तक हमारे मन के दरवाजे खुले हैं हम एक शिक्षा को, एक संस्कार को, एक विद्या को आत्मसात् करने में सक्षम होते हैं। इसीलिये मनीषियों द्वारा कहा गया है कि ज्ञान, बोध और प्रतिभा के लिये गायत्री मंत्र का जप करना चाहिये, और इस वजह से गायत्री मंत्र को उपनयन संस्कार का प्रथम अंग बनाया गया है।

## आसन

इस संस्कार का दूसरा अंग है सूर्य नमस्कार का अभ्यास। जब बच्चों का शरीर बढ़ता है तब शरीर में रासायनिक स्राव होते हैं। ये रसायन शरीर के विकास में सहायता प्रदान करते हैं, मन को परिपक्व बनाने में सहायक होते हैं और साथ-ही-साथ जीवन की वृद्धि में भी सहायता प्रदान करते हैं। सूर्य नमस्कार के द्वारा हम अपने शरीर में होने वाले इन रासायनिक स्रावों को संतुलित कर पाते हैं, क्योंकि सूर्य नमस्कार का काम ही है शरीर में संतुलन की स्थापना और ऊर्जा की वृद्धि। जब हमारे शरीर में रासायनिक स्राव संतुलित हो जाते हैं तब हमारा शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास अच्छा होता है। सूर्य नमस्कार का अभ्यास बच्चों को आठ वर्ष की आयु से बारह वर्ष की आयु तक नियमित करने को कहा जाता है। ऐसा हमारी परम्परा का कहना है। और बारह वर्ष के बाद जो अभ्यास चाहो कर सकते हो।

इस बात को याद रखो कि हर आसन का प्रभाव शरीर के किसी विशेष अंग, ग्रंथि और हॉरमोन पर होता है। अगर हम अपने लिये सही अभ्यासों का चयन नहीं करते हैं, तब फिर हो सकता है कि गलत हॉरमोन का स्राव शुरू हो जाए और वह हमारे लिये हानिकारक भी हो सकता है। इसलिये शरीर में रासायनिक संतुलन

के लिये बच्चों को केवल सूर्य नमस्कार का अभ्यास सिखलाया जाता है। बारह साल के बाद बच्चे शीर्षासन, मत्स्यासन, गरुड़ासन, मयूरासन आदि सब करने के लिये सक्षम होते हैं।

बच्चों को आसनों के उस क्रम से गुजरने की आवश्यकता नहीं जो बड़ों को होती है। जैसा हमने पहले दिन कहा था, बड़े लोगों के लिये आसनों के तीन प्रयोजन होते हैं। पहला प्रयोजन, शरीर में लचीलापन लाना। बच्चों के लिये यह आवश्यक नहीं है क्योंकि उनका शरीर स्वाभाविक रूप से बहुत लचीला रहता है। चूँकि बड़ों के शरीर में लचीलेपन का अभाव होता है, इसलिये उनके लिये आसन का पहला प्रयोजन है शरीर को लचीला बनाना। जब शरीर में लचीलापन आ जाता है तब फिर हम अपनी शरीर संबंधित आदतों को परिष्कृत करने का प्रयास करते हैं, और उसके लिये फिर योग साधना की शुरुआत होती है। फिर तीसरी स्थिति होती है—प्राणों की जागृति और प्राणों में संतुलन। यही हठयोग का प्रयोजन है। हठयोग में जो 'हठ' शब्द है उसका सम्बन्ध होता है प्राण शक्ति और चित्त शक्ति से। 'हं' प्राण शक्ति का बीज मंत्र है और 'ठं' चित्त शक्ति का। हठयोग का प्रयोजन होता है ऊर्जा के इन दो स्वरूपों में सामंजस्य और संतुलन की स्थापना और यह आसन का तीसरा प्रयोजन है।

बच्चों को प्राणों की जागृति के बारे में सोचना नहीं है, क्योंकि अगर योग उनके जीवन में एक आदत बन जाती है तब फिर बिना प्रयास के प्राण जागृत होते हैं। वह शरीर की एक स्वाभाविक स्थिति बन जाती है। बारह वर्ष की आयु के पश्चात् बच्चे

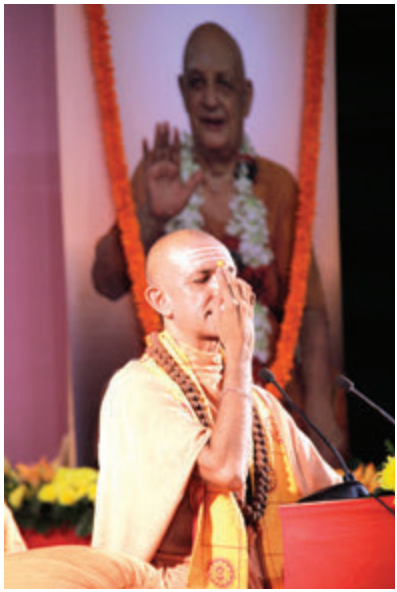

कोई भी आसन करने में सक्षम होते हैं, लेकिन बारह वर्ष तक उन्हें अपने रासायनिक स्रावों और शारीरिक विकास के कारण अभ्यास को केवल सूर्य नमस्कार तक सीमित रखना चाहिये। मैं अभिभावकों को स्पष्ट बोल रहा हूँ कि अपने बच्चों पर अधिक योगासन करने के लिये दबाव मत डालो जब तक वे बारह साल तक के नहीं होते। तब तक उन्हें कुछ कराना है तो सूर्य नमस्कार ही कराओ, उतना पर्याप्त है।

### प्राणायाम

उपनयन संस्कार का तीसरा अंग है नाड़ीशोधन प्राणायाम। नाड़ीशोधन

प्राणायाम से नाड़ियों में शुद्धि, मस्तिष्क में संतुलन और स्नायुतंत्र में व्यवस्था आती है, जिससे बच्चों का सर्वांगीण विकास सही तरीके से होता है तथा उनके शरीर एवं मन में किसी प्रकार के विक्षेप उत्पन्न नहीं होते।

उपनयन संस्कार के समय हमारे ऋषि-मुनि बच्चों को इन तीन चीजों का अभ्यास सिखलाते थे। कालान्तर में हम इन संस्कारों को भूल गये, केवल जनेऊ के धागे को पकड़कर बैठ गये और प्राणायाम, मंत्र तथा आसनों का अभ्यास छोड़ दिया। साधना छूट गई, बस धागे को पहने रहते हैं।

मैं ये बातें इसलिए बोल रहा हूँ ताकि आप उपनयन संस्कार के वास्तविक प्रयोजन को समझ सकें। आप जब अपने बच्चों को योगाभ्यास करने के लिए प्रेरित करते हैं तो सबसे पहले इन्हीं तीन चीजों को सिखलाइये। बच्चों से यह मत कहिये कि स्वामीजी को शीर्षासन या मयूरासन करके दिखाओ। मैं अगर किसी बच्चे को शीर्षासन या मयूरासन करते देखता हूँ तो वह मुझे पसन्द नहीं आता, क्योंकि बच्चों के लिए यह अनुचित और अनुपयोगी है। अगर कोई बच्चा बारह साल के पहले मेरे सामने मयूरासन करेगा तो मैं कहूँगा कि तुम जाकर सर्कस में नौकरी कर लो। जीवन की प्रतिभा के साथ खिलवाड़ करने की कोई आवश्यकता नहीं, बल्कि उसे विकसित करने के लिये हमें अवसर प्रदान करना है। आप यदि धरती में आम का बीज लगाते हो तो क्या रोज बीज को निकालकर देखते हो कि अंकुरित हो रहा है या नहीं? अगर रोज निकालोगे तो वर्षों बीत जायेंगे, बीज कभी अंकुरित नहीं होगा, और आप बोलोगे कि आम का बीज बेकार है, इसे फेंको और दूसरा लगाओ। पर अगर बीज लगाकर प्रतीक्षा कर सकते हो तो कुछ ही समय के पश्चात् उसको अंकुरित होते देखोगे।

इसी तरह बच्चों के साथ भी हर अभिभावक को धैर्य रखना चाहिये। बच्चों का दोष नहीं होता, अभिभावक का दोष होता है, क्योंकि अभिभावक धैर्य नहीं रख पाते। वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को अपने संतान पर आरोपित करते हैं और संतान के उत्थान को बाधित कर देते हैं, संतान की रचनात्मक अभिव्यक्ति को संकीर्ण बना देते हैं। वह संतान फिर अपने प्रारब्ध के अनुसार जीवन में आगे नहीं बढ़ पाता है। आप उसके भाग्य का निर्माण करना चाहते हो, यह भूलकर कि आपसे भी अधिक किसी सक्षम ताकत ने उसके भाग्य का निर्माण पहले ही कर दिया है।

एक उदाहरण देता हूँ, भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति, श्री अब्दुल कलाम जी का। अगर आपने उनकी आत्मकथा 'ऑन द विंग्स ऑफ फायर' पढ़ी है तब आप जानते होंगे कि उनके जीवन में परिवर्तन और मोड़ कब आया। जब वे स्वामी शिवानन्द जी से ऋषिकेश में मिले। किस परिस्थिति में उनसे मिलना हुआ? जब वे एयरफोर्स की परीक्षा पास नहीं कर पाए, निराश हो गये, देहरादून से ऋषिकेश आ गये और असमंजस में पड़े थे कि क्या करूँ, न करूँ, घर वापस जाऊँ या न जाऊँ। तब उनकी मुलाकात स्वामी शिवानन्द जी से होती है और स्वामीजी ने उनसे मात्र दो बातें

कहीं– 'बेटा, पराजय की जो भावना तुम्हारे भीतर अभी आ गई है उसे तुम पराजित करो।' यह पहला आदेश था। दूसरी बात यह कही कि तुम एयरफोर्स में नहीं जा पाये तो कोई बड़ी बात नहीं, क्योंकि ईश्वर ने तुम्हारे लिये पहले से ही निश्चित कर दिया है कि तुम क्या करोगे। एयरफोर्स में जाना तुम्हारी अपनी इच्छा थी, तुम फेल हुए क्योंकि वह ईश्वर की इच्छा नहीं थी। तुम्हारे भविष्य का निर्माण पूर्व ही हो चुका है। स्वामी शिवानन्द जी ने यही दो बातें हमारे पूर्व राष्ट्रपति, श्री अब्दुल कलाम जी से कहीं। उसके बाद उनके जीवन में जो मोड़ आया हर भारतवासी जानता है। श्री अब्दुल कलाम जी ने रामेश्वरम् की नौका से दिल्ली के राष्ट्रपति भवन की यात्रा पूरी की। यह प्रारब्ध है, लेकिन व्यक्ति अगर अपने प्रारब्ध को स्वीकार कर ले तब फिर हमेशा उसका उत्थान होता है। जब व्यक्ति अपने प्रारब्ध का विरोध करता है तब उसका जीवन हमेशा दु:ख और संघर्ष में व्यतीत होता है, क्योंकि वह अपनी इच्छा एवं वासना को सर्वोपरि मानता है और अपने भाग्य को पीछे करता है।

मैं इस उदाहरण के माध्यम से अभिभावकों को यह समझाना चाहता हूँ कि हमारे गुरुजनों ने हमारे सुंदर, स्वस्थ और सफल जीवन के लिए जिस परम्परा की नींव रखी है यदि हम उसका सम्मान करें और उसी के अनुरूप चलें तो हम भी जीवन में उत्तमता को प्राप्त कर सकते हैं। अभिभावक समझें कि हमारा अपने संतान के प्रति क्या दायित्व और जिम्मेदारी है। जहाँ तक बच्चों का सवाल है, बेटा तुम सूर्य नमस्कार, गायत्री मंत्र और नाड़ी शोधन प्राणायाम, इतने को ही करो, तुम्हारे जीवन की प्रतिभा अवश्य विकसित होगी।

*–21 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली*

# सबसे अच्छा है यह स्थान

मृत्युंजय पाण्डेय, सीवान (योग अध्ययन सत्र, फरवरी-मई 2015)

*बिहार योग भारती आश्रम*
*सबसे प्यारा है, सबसे न्यारा है।*

*सत्यानन्द स्वामीजी किये,*
*सत्यानन्द योग का निर्माण*
*अखिल विश्व योग आन्दोलन का,*
*शुरू हुआ अभियान*
*इस आश्रम की परम्परा*
*जीवन के लिये है मूल्यवान*
*योग साधना के लिये*
*सबसे अच्छा है यह स्थान*

*इस आश्रम ने योग सिखाया*
*सेवा प्रेम और दान बताया*
*समय-सेवा के महत्त्व बताकर*
*योग के पथ पर चलना सिखाया*
*आसन, प्राणायाम और ध्यान सिखाया*
*यज्ञ, हवन, योगदृष्टि दिखाया*
*स्वामीजी के कर्मभूमि को करते हैं*
*हम सब प्रणाम*
*योग साधना के लिये*
*सबसे अच्छा है यह स्थान*

*स्वामीजी सत्संगों में*
*ज्ञान की बात बताते हैं*
*मानव के जीवन में सत्य,*
*संकल्प और ज्ञान के दीप जलाते हैं*
*स्वयं को जानो, दिव्यता को पाओ*
*यह है मानव का पहचान*
*योग साधना के लिये*
*सबसे अच्छा है यह स्थान*

*यहाँ के बाग और उपवन सुबह को गमकते हैं*
*स्वामीजी के पक्षी मधुर स्वर में चहकते हैं*
*यहाँ के बागों को वंदन*
*बागों में पेड़ हैं चंदन*
*यहाँ कोयल और बुलबुल*
*गावे हरिनाम का कीर्तन*

*यहाँ गंगा मा का निर्मल जल*
*वायुदेव है शीतल*
*यहाँ की धरती माँ है पावन*
*जो देती है मुट्ठी में स्वर्ण*
*यहीं पर राजा थे एक कर्ण*
*जो देते थे दान में स्वर्ण*
*तब आये स्वामीजी सत्यानन्द*
*बताये योग का प्रचलन*
*कराये विश्व योग सम्मेलन*
*खबर पहुँची यही जन-जन*
*योग से मानव जीवन का हुआ कल्याण*
*योग साधना के लिये*
*सबसे अच्छा है यह स्थान*

# कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

## क्या योग धर्म है?

योग को धर्म की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक विद्या के रूप में देखना चाहिए, जिसका प्रयोजन मनुष्य के जीवन का उत्थान है। यदि आप हमारी संस्कृति का अध्ययन करेंगे तो पाएँगे कि योग शब्द का प्रयोग धर्म के रूप में नहीं हुआ है, बल्कि हमेशा एक विद्या के रूप में हुआ है, 'योग विद्या'। विद्या का उद्देश्य होता है जीवन का उत्थान, जीवन के सकारात्मक गुणों तथा अच्छाइयों को प्रकट करना। इसलिए, भारतीय संस्कृति के अनुसार अगर तुम्हारी सोच, व्यवहार और कर्म ठीक है, उपयुक्त है, तो वह योग सम्मत माना जाता है। योग सम्मत इसलिये कहते हैं क्योंकि योग का प्रयोजन ही है व्यक्तित्व का उत्थान।

बहुत-से लोग योग को धर्म से जोड़ते हैं, क्योंकि वे धर्म के वास्तविक अर्थ को नहीं समझते। हमें देखते हैं तो सोचते हैं कि हम धर्म के प्रचारक हैं, क्योंकि वे संन्यास को भी नहीं समझते है। संन्यासी धर्म का प्रचारक नहीं होता है। हम धर्म के प्रचारक नहीं हैं, हम पण्डित जी नहीं हैं, हमारी कोई धार्मिक संस्था नहीं है, हम एक संन्यासी हैं। जो संन्यासी होता है वह सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज के सिद्धांत पर चलता है। वह सभी धर्मों, मान्यताओं तथा विश्वासों का त्यागकर गुरु और ईश्वर के प्रति अपने आपको समर्पित करता है। संन्यासी धर्मावलम्बी नहीं होता है। हम एक संन्यासी हैं, हिन्दू, ईसाई या मुसलमान नहीं। धर्म तो एक संकीर्ण मानसिकता, चिंतन और आचरण है। ईश्वर की सर्वव्यापकता को दो-चार शब्दों में बाँधकर धर्म का निर्माण किया जाता है, और इसलिए धर्म विद्या नहीं है।

विद्या के बिना तो मनुष्य का जीवन पशु के समान होता है। विद्या को हटा देने से मनुष्य का जीवन अंधकारमय हो जायेगा, जबकि मनुष्य जीवन को विद्या से जोड़ने से मनुष्य का विकास और उत्थान होता है। इसीलिये हमारे मनीषियों ने योग को कभी धर्म के रूप में नहीं माना है। योग एक साधना और एक विद्या के रूप में साधुओं के पास सुरक्षित रही।

हमारे देश में बहुत-से महान् साधु, संत और संन्यासी हुए जैसे ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र, पतंजलि, घेरण्ड, स्वामी शिवानन्द और स्वामी सत्यानन्द, लेकिन जिस भी युग में वे इस संसार में आये, उन्होंने एक विद्या का प्रचार किया है, धर्म का नहीं। महात्मा बुद्ध भी जब आये तो उन्होंने एक विद्या का ही प्रचार किया। उनकी मृत्यु के पचास वर्ष बाद बौद्ध मत का प्रादुर्भाव हुआ और वह एक धर्म बना। ईसा मसीह भी जब आये तो उन्होंने धर्म-स्थापना की बात नहीं कही, बल्कि आध्यात्मिक

जीवन की बात की। ईसाई धर्म की शुरुआत येरूशलम में नहीं, रोम में हुई, ईसा मसीह की मृत्यु के पचास साल बाद।

इस प्रकार इतिहास में यह देखने में आया है कि धर्म संत नहीं, मनुष्य बनाते हैं। साधु, संत और संन्यासी केवल शिक्षा देते हैं। उस शिक्षा के अनुसार चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। ये सभी मनीषियों के वचन हैं। किसी भी मनीषी ने यह नहीं कहा कि मैं एक धर्म को स्थापित करने के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ। धर्म को विकसित किये हैं समाज के लोग जो एक परम्परा को एक मान्यता के साथ जोड़े हैं। जब परम्परा और मान्यता एक होते हैं तब धर्म बनता है। जब परम्परा अलग है तो संस्कृति है, जब मान्यता अलग है तो विद्या है, पर जब दोनों का समावेश होता है तो धर्म बनता है।

**जब हम गुरु से दूर रहते हैं तब हम उनके साथ संपर्क कैसे स्थापित करें? बहुत बार ऐसा लगता है मन में जो विचार आ रहे हैं वे गुरु द्वारा प्रेषित हैं। यह सत्य है या केवल मन का भ्रम है?**

कोई भी चेला सक्षम नहीं है कि वह अपने गुरु के साथ आन्तरिक सम्पर्क या सम्बन्ध स्थापित करे। इसलिये अगर सोचते हो कि गुरु तुम्हारे मन में कुछ बोल रहे हैं तो वह तुम्हारी अपनी भ्रांति है। गुरु से तुम्हारा सम्बन्ध क्या है? क्या गुरु के प्रति

शत-प्रतिशत समर्पित हो? क्या उनकी सभी शिक्षाओं का सौ प्रतिशत पालन करते हो? या केवल 'डूबते को तिनके का सहारा' के रूप में तुम गुरु को पकड़कर बैठे हो कि जब मैं डूबूँ तो वे मेरे सहारा हैं।

अगर डूबते को तिनके का सहारा वाली बात है तो फिर गुरु के साथ सम्बन्ध होता ही नहीं है। गुरु केवल हमारे जीवन से कष्टों को मुक्त करने के लिये काम आते हैं और जब हमारे जीवन से कष्ट दूर हो जाते हैं तब हम गुरुजी को प्रणाम करके कहते हैं, 'आपकी कृपा से मेरे सारे कष्ट दूर हो गये, अब मैं चला।' जो लोग मंत्र या अन्य कोई दीक्षा लेते हैं, क्या वे पूर्णरूपेण गुरु की ऊर्जा से युक्त होते हैं, या केवल अपनी आँखें बन्द करके अपनी परेशानियाँ बोलते हैं और सोचते हैं कि यह बात गुरु तक पहुँच रही है और फिर जब अपना ही जवाब मिलता है तो सोचते हैं कि वह उत्तर गुरु से मिला है।

हम स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्य की चेतना इतनी संवेदनशील नहीं है कि वह गुरु के साथ आंतरिक सम्बन्ध और सम्पर्क को स्थापित कर सके। एक संन्यासी शिष्य जो गुरु के साथ रहकर साधना करता है, वह भी गुरु के साथ आंतरिक सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाता है।

गुरु तो परमतत्त्व है और उस परमतत्त्व से जुड़ने के लिये या तो श्रद्धा की आवश्यकता होती है या फिर समर्पण की या फिर गुरु को ही अपना सब कुछ मानने की। अगर श्रद्धा प्रबल है तब गुरु का आदेश मिल सकता है, अगर पूर्ण समर्पण है तब गुरु का साथ हमेशा रहता है, और जब गुरु के साथ हम जुड़ते हैं तब फिर दोनों में कोई भेदभाव नहीं होता। ये तीन स्थितियाँ होती हैं शिष्य के जीवन में।

हनुमान जी से जब यह बात पूछी गई कि राम जी के साथ आपका क्या सम्बन्ध है, तो उन्होंने कहा, 'अगर शारीरिक रूप से देखूँ तो मैं उनका सेवक हूँ और यही मेरा काम है, यही मेरा धर्म है। राम जी कहेंगे, लंका जाओ तो चले जायेंगे, राम जी कहेंगे, महल में झाड़ू लगा दो, लगा देंगे। शरीर भाव से मैं उनका दास हूँ, जीव दृष्टि से देखा जाए तो मैं उनका अंश हूँ और आत्मा से देखा जाए तो एक ही रूप है–

*देहबुध्या तु दासोऽहं जीवबुध्या त्वदंशकः।*
*आत्मबुध्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥*

जब शिष्य अपनी अन्तरात्मा में अपने गुरु को देख पाता है तब सीधा सम्पर्क बनता है, लेकिन जब तक शिष्य अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और वासनाओं के चश्मे से गुरु को देखता है, गुरु उसके जीवन में अवतरित नहीं होते। वह जो भी सोचता है उसकी अपनी भ्रांति होती है।

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध बहुत शुद्ध होता है जिसमें अहंकार या वासना का कोई स्थान नहीं होता। जब आत्मभाव आता है तब गुरु और शिष्य दोनों एकाकार

होते हैं। उसके पूर्व श्रद्धा या समर्पण से हम कुछ समय के लिये गुरु के साथ अपना सम्पर्क या सम्बन्ध बैठाते हैं। यही तीन अवस्थायें हैं जो शिष्य के जीवन में घटित होती हैं।

**गर्भावस्था में योग का क्या महत्त्व है? गर्भावस्था में कितने महीने तक योगाभ्यास कर सकते हैं?**

गर्भावस्था की अवधि में योग अवश्य किया जा सकता है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है मेरी अपनी माताजी। मुझे मालूम है कि जिस दिन मैं गर्भ में आया उस दिन से मेरी माताजी ने वह साधना शुरू कर दी थी जो हमारे गुरुजी ने उन्हें बतलाई थी। आसन, प्राणायाम, जप और ध्यान का कार्यक्रम चला था जब तक मेरा जन्म नहीं हुआ। हाँ, छः महीने के बाद आसन करने में परेशानी होती है, लेकिन प्राणायाम और मंत्र जप अवश्य कर सकते हैं। इसका असर गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। प्राणायाम और मंत्र जप को आप अन्त तक जारी रख सकते हैं।

जब आप मंत्र का जप करते हैं तब उस मंत्र को एक कवच के रूप में अपने गर्भ में देखना चाहिये। आप लोगों ने महाभारत में पढ़ा होगा कि अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित, जो उत्तरा के गर्भ में था, उसकी रक्षा श्रीकृष्ण ने स्वयं की थी। ब्रह्मास्त्र के कारण गर्भ में उसकी मृत्यु हो चुकी थी, लेकिन कृष्ण जी ने गर्भ में प्रवेश कर शिशु को जीवित किया और उसे संरक्षण प्रदान किया। आधुनिक संदर्भ में वह सुरक्षा कवच मंत्र है। कृष्ण जी तो साक्षात् ईश्वर थे, कोई भी रूप धारण कर सकते

थे, कहीं भी प्रवेश कर सकते थे, लेकिन उनकी जो विभूति या जिस रूप में उन्होंने शरीर में प्रवेश किया वह विभूति या रूप मंत्र था।

मंत्र द्वारा गर्भ का पालन-पोषण होता है। पूर्व काल में यह भारत की परम्परा भी रही है। आजकल आधुनिकता के कारण हम अनेक सांस्कृतिक सत्यों को भूल चुके हैं, लेकिन हमारी परम्परा में एक शिशु के विकास के लिये गर्भ एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्र माना गया है क्योंकि माँ के संस्कार गर्भस्थ बच्चे को प्राप्त होते हैं। आजकल तो विदेशों में भी गर्भवती महिलाओं को यह सलाह दी जाती है कि शराब पीना छोड़ दो, सिगरेट छोड़ दो, उत्तेजक संगीत सुनना छोड़ दो, शान्त संगीत सुना करो। पाश्चात्य सभ्यता में अब डॉक्टर भी गर्भावस्था के लिये कुछ नियम और सुझाव देने लगे हैं। लेकिन इन नियमों और सुझावों की शिक्षा उन्हें कहाँ से मिली? हमारे एशिया की संस्कृति से मिली है, चाहे वह चीन हो या जापान या दक्षिण-पूर्वी एशिया या हमारा अपना देश।

एशिया की संस्कृति शुरू से अन्तर्मुखी रही है जबकि पाश्चात्य जगत् में बहिर्मुखी संस्कृति रही है। जहाँ पर बहिर्मुखता है वहाँ पर लोग अपने वातावरण को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं, और जहाँ पर अन्तर्मुखता है वहाँ पर लोग स्वयं को वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं।

भारतवासियों का यही विचार और यही चिंतन रहा है कि अगर गर्भवती माता अपने मन को शान्त करके मन की शक्तियों को गर्भ में पल रहे बच्चे पर केन्द्रित करे तब माँ की सम्पूर्ण ऊर्जा और संस्कार संतान को प्राप्त होते हैं। पिता के वीर्य से केवल शिशु का शरीर बनता है, लेकिन माँ गर्भ में संतान को संस्कार और संवेदनशीलता प्रदान करती है, और यही संस्कार व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक बनते हैं।

बुद्धि, मन और मंत्र—ये ऊर्जा के ही रूप हैं और ऊर्जा के द्वारा ऊर्जा को प्रभावित किया जाता है। मंत्र की ऊर्जा से हम गर्भस्थ शिशु की मानसिकता में परिवर्तन ला सकते हैं और उसके बिगड़े भाग्य का निर्माण भी कर सकते हैं। विधाता एक भाग्य देता है लेकिन उस भाग्य को समझने और झेलने की शक्ति माँ से प्राप्त होती है। अगर माँ अपने आप में ऊर्जावान् है तो उसकी संतान सौ राम के बराबर शक्तिशाली हो सकती है, पर अगर माँ ऊर्जावान् नहीं है तो संतान भी ऊर्जाहीन होती है।

इसलिये गर्भावस्था में योगासन छः महीने तक और उसके बाद प्राणायाम एवं मंत्र का अभ्यास जन्म तक निरंतर होना चाहिये। कुछ ही दिनों में बिहार योग विद्यालय गर्भवती माताओं के लिये एक नया प्रकाशन प्रस्तुत करने जा रहा है जिसमें यह बतलाया गया है कि किस प्रकार एक यौगिक पद्धति से माताएँ अपने शिशु को एक उत्तम संतान बना सकती हैं।

**जब मैं प्रत्याहार करता हूँ मेरा मन निष्क्रिय हो जाता है। ध्यान के दौरान शरीर में हलचल भी शुरू हो जाती है, जैसे कंपन इत्यादि। कृपया बतायें यह क्यों होता है? ऐसा होना अच्छा है या नहीं?**

महर्षि पतंजलि राजयोग में आठ अवस्थाओं की चर्चा करते हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम-नियम का सम्बन्ध है मनुष्य जीवन के अनुशासन और व्यवहार के साथ, आसन और प्राणायाम का सम्बन्ध रहता है शरीर और प्राण के साथ, प्रत्याहार और धारणा का सम्बन्ध रहता है अपने मन को शान्त करने से और उसके बाद ध्यान तथा समाधि का सम्बन्ध रहता है एक अवस्था में तन्मय हो जाने से। यहाँ बात हो रही है प्रत्याहार के बारे में जैसा कि प्रश्नकर्त्ता ने पूछा है। प्रश्नकर्त्ता कहता है कि मैं जब प्रत्याहार करता हूँ तब मेरा मन काम नहीं करता। इसका सीधा उत्तर है कि आप प्रत्याहार नहीं कर रहे हो क्योंकि अगर प्रत्याहार करोगे तो मन कभी निष्क्रिय नहीं होगा, बल्कि मन अधिक चैतन्य होता है, अधिक व्यावहारिक, सजग और क्रियाशील होता है, लेकिन इसकी सजगता, क्रियाशीलता एवं व्यावहारिकता आंतरिक और बाह्य दोनों होती है।

गीता में अर्जुन को कहा गया है कि अगर तुम अपने जीवन में शान्ति चाहते हो तो अपनी इन्द्रियों को उसी तरह अपने भीतर समेटो जिस तरह कछुआ अपने अंगों को अपने कवच में समेटता है। यह जो उदाहरण श्रीकृष्ण अर्जुन को देते हैं वही प्रत्याहार है। प्रत्याहार का मतलब होता है अपनी इन्द्रियाँ को जो अभी संसार से जुड़ी हैं, उन्हें अपने भीतर समेटना। जब तुम इन्द्रियों को समेटोगे तो मन का संसार के विषयों से सम्बन्ध-विच्छेद होगा। रात को जब आप सोते हो तब आपका मन सिमट जाता है, इसलिए आपको नींद आ जाती है। जब तक आपका मन सिमटेगा नहीं अर्थात् अंतर्मुखी नहीं होगा, आप सो नहीं पाओगे, करवटें बदलते रहोगे क्योंकि मन की स्थिति बहिर्मुखी है और इन्द्रियाँ भी अपने आपको समेटी नहीं हैं। लेकिन जब हम अपनी इन्द्रियों को समेटते है तो तुरंत नींद आती है, क्योंकि मन का संसार और संसार के विषयों से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। जब आप रात को सोते हो, वह भी प्रत्याहार की ही एक स्थिति है। योग निद्रा का अभ्यास भी प्रत्याहार का ही अभ्यास है। बिना प्रत्याहार सिद्ध किए ध्यान शुरू नहीं होता है।

प्रत्याहार का सबसे सीधा और सहज अर्थ निकलता है कि आँखों को बन्द करके भीतर देखो। अगर हम केवल दो मिनट के लिये भी आँखें बन्द कर लेंगे तो वह भी प्रत्याहार है। ध्यान का अभ्यास आधे घंटे तक सरलतापूर्वक किया जा सकता है, चौबीस घंटे तो नहीं किया जा सकता है। योग निद्रा भी आप आधे घंटे तक कर सकते हो। मतलब प्रत्याहार की जो स्थिति आप लाते हो अपने जीवन में वह चौबीस घंटे में आधे घंटे से ज्यादा नहीं होती है। जब आधे घंटे से ज्यादा आप प्रत्याहार नहीं करते हो तो मन के निष्क्रिय होने का सवाल ही कहाँ उत्पन्न होता है।

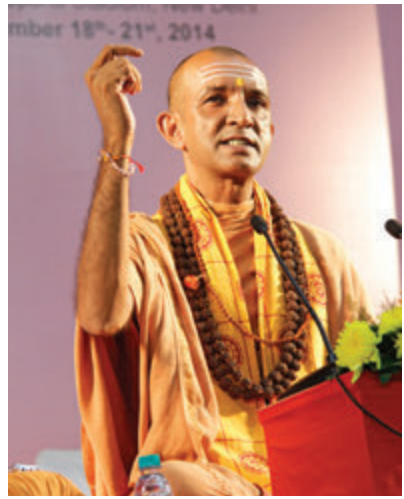

चंचल चित्तवृत्तियाँ सब लोगों में हैं। यदि आप उन चंचल चित्तवृत्तियों को नियंत्रित करने का प्रयास करते हो तो वे शान्त हो जाती हैं और उसके बाद जब आप उनको फिर से लाने को प्रयास करते हो तो हो सकता है उस समय आप कुछ सक्रिय और कुछ निष्क्रिय अवस्थाओं का अनुभव करें। लेकिन प्रत्याहार, धारणा और ध्यान का जो क्रम है उसमें हम अन्तर्मुखी होकर फिर अपने सम्बन्ध को बाहर से जोड़ते हैं ताकि हम अन्दर और बाहर की दुनिया में संतुलन की स्थापना कर सकें। योग इस बात को मानता है कि जब हमें इस बाह्य संसार में रहना है, इस संसार में ही अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना है, तो यह निष्क्रिय होकर संभव नहीं है, बल्कि पूर्ण चैतन्यता और सजगता के साथ संसार में संलग्न होना है।

ध्यान के क्रम में आन्तरिक अनुभव स्वत: प्रकट होते हैं। एक अभ्यास होता है आँख बंद करके, जिसमें मन में आ रहे विचारों को तुम देखते हो या खुद से कुछ कल्पना करते हो। जो ज्ञान योगी होते हैं वे ध्यान के समय प्रश्न करते हैं कि मैं कौन हूँ। जो भक्ति योगी होते हैं वे ध्यान के समय अपने आराध्य के स्वरूप पर एकाग्र होते हैं, और जो राजयोगी होते हैं वे प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के क्रम से गुजरते हैं। इस प्रकार योग की अनेक शाखाएँ हैं जिनमें एकाग्रता और ध्यान की अलग-अलग पद्धतियाँ बतलाई जाती हैं।

अगर ज्ञान योग का ध्यान करते हो तो अपने आप से चुपचाप पूछो कि मैं कौन हूँ, और उसका उत्तर खोजो। क्या मैं शरीर हूँ, क्या मैं इन्द्रियाँ हूँ, क्या मैं वासना हूँ, क्या मैं इच्छा हूँ, क्या मैं द्वेष हूँ, क्या मैं घृणा हूँ, क्या मैं महत्त्वाकांक्षा हूँ, क्या मैं प्रेम हूँ, क्या मैं करुणा हूँ, क्या मैं आत्मा हूँ? यह सब पूछकर एक निर्णय पर पहुँचो और उसके बाद यह समझने का प्रयास करो कि जिस निर्णय पर तुम पहुँचे हो उसका अनुभव किया है या नहीं। अगर कहते हो कि मैं शरीर नहीं हूँ, आत्मा हूँ, तब फिर पूछो क्या मैंने अपने भीतर स्थित आत्मा का अनुभव किया है? यदि उत्तर नहीं है, तो फिर वैसा एक विचार, जिसका आपने कभी अनुभव नहीं किया है वह आपके जीवन का आधार-स्तम्भ कैसे हो सकता है?

इसलिए महर्षि पतंजलि ने एक क्रम को स्थापित किया है जिसमें प्रत्याहार के द्वारा हम यह प्रवीणता प्राप्त कर लें कि संसार के विषयों से कुछ समय के लिये

स्वयं को मुक्त कर सकें, धारणा के द्वारा हम यह प्रवीणता प्राप्त करें कि अपने चंचल मन को एक बिन्दु पर कुछ अवधि के लिये एकाग्र कर सकें, और ध्यान कि अवस्था में स्वयं को तन्मय कर सकें। ध्यान में देश-काल-परिस्थिति सब भूल जाते हैं और जब उसी तन्मयता की वृद्धि होती है तो वह समाधि कहलाती है। यह एक-आध घंटे के लिये नहीं होती, बल्कि चौबीस घंटे तन्मयता, आनन्द और शान्ति की एक अवस्था साथ में रहती है।

यह क्रम महर्षि पतंजलि ने दिया है और इस क्रम के द्वारा हम अपने मन की चंचलता को शान्त करके सूक्ष्म अनुभवों को प्राप्त कर सकते हैं। जब तक मन की चंचल चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं होता हम ध्यान में प्रवेश नहीं कर पाते हैं, क्योंकि ध्यान का अर्थ ही होता है ऐसी स्थिति जहाँ पर चंचलता का अनुभव न हो, बल्कि दृढ़ता, एकाग्रता, शान्ति, स्थिरता और रचनात्मकता का अनुभव हो और ऐसी स्थिति में मन का निष्क्रिय होना असंभव है।

राजयोग के ध्यान में केवल शान्ति का अनुभव होता है। अगर भक्ति योग के मार्ग से चलें तो ध्यान में श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास का अनुभव होगा। अगर ज्ञान मार्ग के ध्यान से चलें तब फिर केवल आत्मतत्त्व का चिंतन होता है। अगर वेदान्त द्वारा प्रदर्शित ध्यान मार्ग पर हम चलें तो आत्मभाव की जागृति होती है। अगर तंत्र द्वारा निर्देशित ध्यान मार्ग पर हम चलें तब शिव-शक्ति का बोध होता है। अगर हम सांख्य द्वारा प्रतिपादित ध्यान मार्ग पर चलें तब फिर अपने मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार का नाश कर हम परमतत्त्व में अपने आपको स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार योग की हर शाखा ने एक विशेष ध्यान पद्धति का चयन किया है, और इनमें राजयोग की जो ध्यान पद्धति है वह बहुत ही क्रमिक और सटीक है, क्योंकि उसका प्रयोजन है चंचल चित्तवृत्ति का निरोध।

आपने प्रश्न किया है कि ध्यान करते समय शरीर में हलचल शुरू हो जाती है, जैसे शरीर में कंपन या गर्दन का घूमना। यह एक सामान्य प्रतिक्रिया नहीं है, क्योंकि यह संकेत देती है कि आपके प्राण संतुलित और संयमित नहीं हैं। जब तक आपके प्राण संयमित और व्यवस्थित नहीं होते तब तक इनका उत्पात आपके मन को एकाग्र नहीं होने देगा। शरीर में अगर कंपन हो रही है तो मंत्र में ध्यान लगेगा क्या? गर्दन टेढ़ी हो रही है तो ध्यान लगेगा क्या? नहीं लगेगा, बल्कि आपका ध्यान उधर ही चला जायेगा कि मेरी गर्दन टेढ़ी हो रही है या सिर घूम रहा है। प्राणों में असंतुलन के कारण ये स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो ध्यान में एक विघ्न के रूप में प्रकट होती हैं। इसीलिये प्रत्याहार के पूर्व प्राणायाम को सिद्ध किया जाता है क्योंकि प्राणायाम के द्वारा जब हम अपने उत्तेजक प्राणों को शान्त कर देते हैं तब फिर सरलता से प्रत्याहार में प्रवेश करना संभव होता है, उसके पहले नहीं।

*–18 सितम्बर 2014, त्यागराज स्पोर्ट्स स्टेडियम, दिल्ली*

# योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

## सत्यम् गाथा–चन्द्रलोक के साहसी संन्यासी

पृष्ठ 16

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती तथा श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित सत्यम् गाथाएँ उनकी आध्यात्मिक एवं यौगिक शिक्षाओं को सरल, रोचक ढंग से दुनियाभर के लोगों तक पहुँचाने का माध्यम हैं।

तीन संन्यासियों की चन्द्रलोक से धरती तक की यह यात्रा एक साधक की अपने मूल स्वरूप की खोज को दर्शाती है। जीवन के अधिकांश क्लेशों के समाधान वहीं जो विद्यमान हैं। चन्द्रलोक की सभ्यता भले ही भौतिक और मानसिक स्तर पर उन्नत हो गई हो, पर इसकी सबसे बड़ी समस्या अपने अनाहत चक्र, अपने हृदय के कोमल गुणों को पूरी तरह विकसित करने की असमर्थता है। इसके लिए अपने स्वार्थ का निर्मूलन कर, दूसरों के लिए आत्म-बलिदान करने के लिए तैयार होना होगा।

उपलब्ध

**पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–**
**योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,** गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

## सत्यानन्द योग वेबसाइट

### www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

### www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

### 'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

### www.yogamag.net

योगा पत्रिका की इस आधिकारिक वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में विभिन्न श्रेणियों की खोज सुविधा भी उपलब्ध है।

### आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code


# योगपीठ के सत्र एवं कार्यक्रम 2015-2016

| | |
|---|---|
| *सितम्बर 8* | स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव |
| *सितम्बर 12* | स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस |
| *अक्टूबर 1-जनवरी 25 2016* | चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी) |
| *अक्टूबर 3-20* | योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी) |
| *दिसम्बर 25* | स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस |
| *जनवरी 1 2016* | श्री हनुमान चालीसा पाठ (108 बार) |
| *फरवरी 1-मई 25* | चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी) |
| *फरवरी 9-12* | श्री यंत्र आराधना |
| *फरवरी 13* | बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस |
| *फरवरी 14* | बाल योग दिवस |
| *फरवरी 21-27* | योग कैप्सूल-श्वास सम्बन्धी (हिन्दी) |
| *मार्च 20-अप्रैल 3* | योग कैप्सूल-पूर्ण स्वास्थ्य (हिन्दी) |
| *अप्रैल 24-30* | योग कैप्सूल-पाचन सम्बन्धी (हिन्दी) |
| *प्रत्येक शनिवार* | महामृत्युंजय हवन |
| *प्रत्येक एकादशी* | भगवद् गीता पाठ |
| *प्रत्येक पूर्णिमा* | सुन्दरकाण्ड पाठ |
| *प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख* | श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव |
| *प्रत्येक 12 तारीख* | अखण्ड रामचरितमानस पाठ |

**आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।**


**उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-**

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।